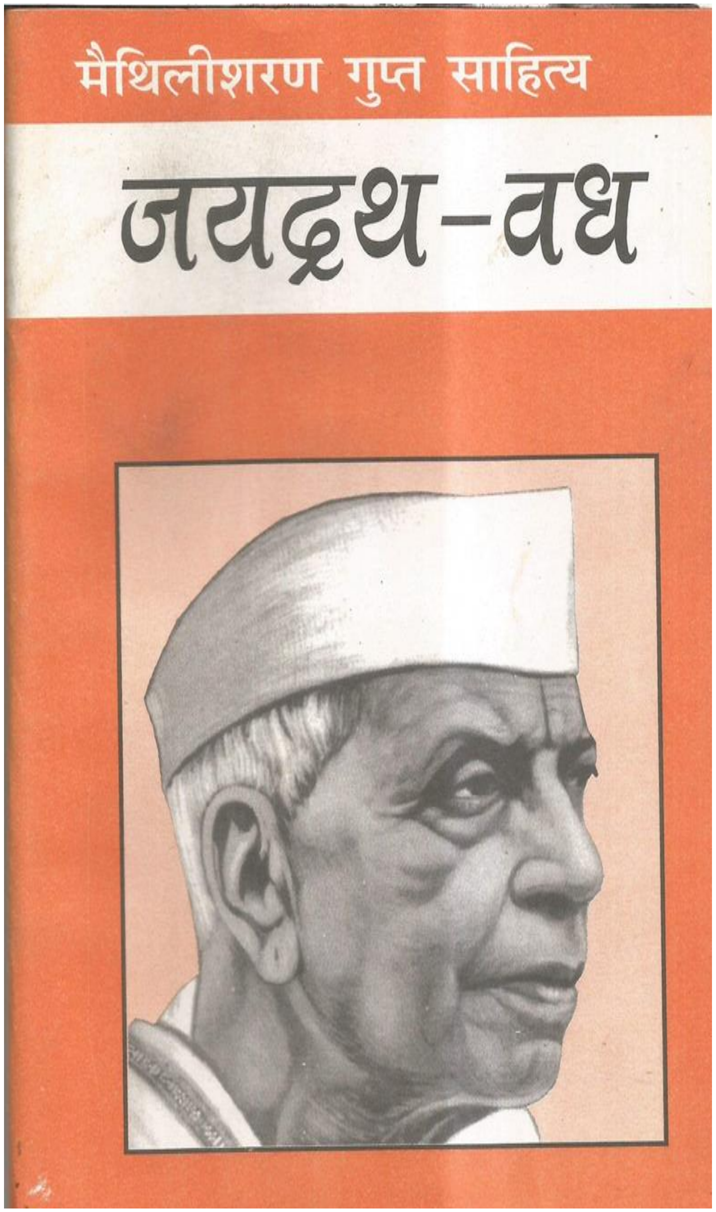
`




## Syllabus for III B.Com/BBA

**UNIT I**

**Poetry: Jayadratha Vadh : Maithilisharana Gupt**

खण्डकाव्य : जयद्रथ वध : मैथिलीशरण गुप्त

**UNIT II**

**Grammar: Linga, Vachana, Karak, Kaal, Pratyaya and Upasarga**

व्याकरण : लिंग, वचन, काल, कारक, प्रत्यय और उपसर्ग

**UNIT III**

**Types of Literature: Natak, Upanyas, Kavya and Nibandh**

साहित्यिक प्रकारों का परिचय: नाटक, उपन्यास, काव्य और निबन्धों की परिभाषा, प्रकार एवं तत्त्व

**प्रथम सर्ग**

**3** वाचक ! प्रथम सर्वत्र ही 'जय जानकी जीवन' कहो,
फिर पूर्वजों के शील की शिक्षा तरंगों में बहो।
दुख, शोक, जब जो आ पड़े, सो धैर्य पूर्वक सब सहो,
होगी सफलता क्यों नहीं कर्त्तव्य पथ पर दृढ़ रहो।।
अधिकार खो कर बैठ रहना, यह महा दुष्कर्म है;
न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है।
इस तत्व पर ही कौरवों से पाण्डवों का रण हुआ,
जो भव्य भारतवर्ष के कल्पान्त का कारण हुआ।।
सब लोग हिलमिल कर चलो, पारस्परिक ईर्ष्या तजो,
भारत न दुर्दिन देखता, मचता महाभारत न जो।।
हो स्वप्नतुल्य सदैव को सब शौर्य्य सहसा खो गया,
हा ! हा ! इसी समराग्नि में सर्वस्व स्वाहा हो गया।

**4** दुर्वृत्त दुर्योधन न जो शठता-सहित हठ ठानता,
जो प्रेम-पूर्वक पाण्डवों की मान्यता को मानता,
तो डूबता भारत न यों रण-रक्त-पारावार में,
'ले डूबता है एक पापी नाव को मझधार में।'
हा ! बन्धुओं के ही करों से बन्धु-गण मारे गये !
हा ! तात से सुत, शिष्य से गुरु स-हठ संहारे गये।
इच्छा-रहित भी वीर पाण्डव रत हुए रण में अहो।
कर्त्तव्य के वश विज्ञ जन क्या-क्या नहीं करते कहो ?
वह अति अपूर्व कथा हमारे ध्यान देने योग्य है,
जिस विषय में सम्बन्ध हो वह जान लेने योग्य है।
अतएव कुछ आभास इसका है दिया जाता यहाँ,
अनुमान थोड़े से बहुत का है किया जाता यहाँ।।
रणधीर द्रोणाचार्य-कृत दुर्भेद्य चक्रव्यूह को,
शस्त्रास्त्र, सज्जित, ग्रथित, विस्तृत, शूरवीर समूह को,
जब एक अर्जुन के बिना पांडव न भेद कर सके,
तब बहुत ही व्याकुल हुए, सब यत्न कर करके थके।।
यों देख कर चिन्तित उन्हें धर ध्यान समरोत्कर्ष का,
प्रस्तुत हुआ अभिमन्यु रण को शूर षोडश वर्ष का।
वह वीर चक्रव्यूह-भेदने में सहज सज्ञान था,
निज जनक अर्जुन-तुल्य ही बलवान था, गुणवान था।।
''हे तात् ! तजिए सोच को है काम क्या क्लेश का ?
मैं द्वार उद्घाटित करूँगा व्यूह-बीच प्रवेश का।।''
यों पाण्डवों से कह, समर को वीर वह सज्जित हुआ,
छवि देख उसकी उस समय सुरराज भी लज्जित हुआ।।

**5** नर-देव-सम्भव वीर वह रण-मध्य जाने के लिए,
बोला वचन निज सारथी से रथ सजाने के लिए।
यह विकट साहस देख उसका, सूत विस्मित हो गया,
कहने लगा इस भाँति फिर देख उसका वय नया-
''हे शत्रुनाशन ! आपने यह भार गुरुतर है लिया,
हैं द्रोण रण-पण्डित, कठिन है व्यूह-भेदन की क्रिया।
रण-विज्ञ यद्यपि आप हैं पर सहज ही सुकुमार हैं,
सुख-सहित नित पोषित हुए, निज वंश-प्राणाधार हैं।''
सुन सारथी की यह विनय बोला वचन वह बीर यों-
करता घनाघन गगन में निर्घोष अति गंभीर ज्यों।
''हे सारथे ! हैं द्रोण क्या, देवेन्द्र भी आकर अड़े,
है खेल क्षत्रिय बालकों का व्यूह-भेदन कर लड़े।
श्रीराम के हयमेध से अपमान अपना मान के,
मख अश्व जब लव और कुश ने जय किया रण ठान के।।
अभिमन्यु षोडश वर्ष का फिर क्यों लड़े रिपु से नहीं,
क्या आर्य-वीर विपक्ष-वैभव देखकर डरते कहीं ?
सुनकर गजों का घोष उसको समझ निज अपयश –कथा,
उन पर झपटता सिंह-शिशु भी रोषकर जब सर्वथा,
फिर व्यूह भेदन के लिए अभिमन्यु उद्यत क्यों न हो,
क्य वीर बालक शत्रु की अभिमान सह सकते कहो ?
मैं सत्य कहता हूँ, सखे ! सुकुमार मत मानो मुझे,
यमराज से भी युद्ध को प्रस्तुत सदा जानो मुझे !
है और की तो बात ही क्या, गर्व मैं करता नहीं,
मामा तथा निज तात से भी समर में डरता नहीं।। **5**

**6** ज्यों ऊनषोडश वर्ष के राजीव लोचन राम ने,
मुनि मख किया था पूर्ण वधकर राक्षसों के सामने।
कर व्यूह-भेदन आज त्यों ही वैरियों को मार के,
निज तात का मैं हित करूँगा विमल यश विस्तार के।।''
यों कह वचन निज सूत से वह वीर रण में मन दिए,
पहुँचा शिविर में उत्तरा से विदा लेने के लिए।
सब हाल उसने निज प्रिया से जब कहा जाकर वहाँ,
कहने लगी वह स्वपति के अति निकट आकर वहाँ-
''मैं यह नहीं कहती कि रिपु से जीवितेश लड़ें नहीं,
तेजस्वियों की आयु भी देखी भला जाती कहीं ?
मैं जानती हूँ नाथ ! यह मैं मानती हूँ तथा-
उपकरण से क्या शक्ति में हा सिद्धि रहती सर्वथा।।''
''क्षत्राणियों के अर्थ भी सबसे बड़ा गौरव यही-
सज्जित करें पति-पुत्र को रण के लिए जो आप ही।
जो वीर पति के कीर्ति-पथ में विघ्न-बाधा डालतीं-
होकर सती भी वह कहाँ कर्त्तव्य अपना पालतीं ?
अपशकुन आज परन्तु मुझको हो रहे सच जानिए,
मत जाइए सम्प्रति समर में प्रर्थना यह मानिए।
जाने न दूँगी आज मैं प्रियतम तुम्हें संग्राम में,
उठती बुरी है भावनाएँ हाय ! इस हृदाम में।
है आज कैसा दिन न जाने, देव-गण अनुकूल हों;
रक्षा करें प्रभु मार्ग में जो शूल हों वे फूल हों।
कुछ राज-पाट न चाहिए, पाऊँ न क्यों मैं त्रास ही;
हे उत्तरा के धन ! रहो तुम उत्तरा के पास ही।। **6**

**7** कहती हुई यों उत्तरा के नेत्रजल से भर गये,
हिम के कणों से पूर्ण मानो हो गये पंकज नये।
निज प्राणपति के स्कन्ध पर रखकर वदन वह सुन्दरी,
करने लगी फिर प्रार्थना नाना प्रकार व्यथा-भरी।।
यों देखकर व्याकुल प्रिया को सान्त्वना देता हुआ,
उसका मनोहर पाणि-पल्लव हाथ में लेता हुआ,
करता हुआ वारण उसे दुर्भावना की भीति से,
कहने लगा अभिमन्यु यों प्यारे वचन अति प्रीति से-
''जीवनमयी, सुखदायिनी, प्राणाधिके, प्राणप्रिये !
कातर तुम्हें क्या चित्त में इस भाँति होना चाहिये ?
हो शान्त सोचो तो भला क्या योग्य है तुमको यही।
हा ! हा ! तुम्हारी विकलता जाती नहीं मुझसे सही।।
वीर-स्नुषा तुम वीर-रमणी, वीर-गर्भा हो तथा,
आश्चर्य, जो मम रण-गमन से हो तुम्हें फिर भी व्यथा !
हो जानती बातें सभी कहना हमारा व्यर्थ है,
बदला न लेना शत्रु से कैसा अधर्म अनर्थ है ?
निज शत्रु का साहस कभी बढ़ने न देना चाहिए,
बदला समर में वैरियों से शीघ्र लेना चाहिए समुचित सदा,
वर-वीर क्षत्रिय-वंश का कर्त्तव्य है यह सर्वदा।
इन कौरवों ने हा ! हमें संताप कैसे हैं दिए,
सब सुन चुकी हो तुम इन्होंने पाप जैसे हैं किए !
फिर भी इन्हें मारे बिना हम लोग यदि जाते रहें,
तो सोच लो संसार भर के वीर हमसे क्या कहें ?



**8** जिस पर हृदय का प्रेम होता सत्य और समग्र है,
उसके लिए चिन्तित तथा रहता सदा वह व्यग्र है।
होता इसी से है तुम्हारा चित्त चंचल हे प्रिये !
यह सोचकर सो अब तुम्हें शंकित न होना चाहिए—
रण में विजय पाकर प्रिये ! मैं शीघ्र आऊँगा यहाँ,
चिन्तित न हो मन में, न तुमको भूल जाऊँगा वहाँ !
देखो, भला भगवान ही जब हैं हमारे पक्ष में,
जीवित रहेगा कौन फिर आकर हमारे लक्ष में ?''
यों धैर्य देकर उत्तरा को, हो विदा सद्भाव से !
वीराग्रणी अभिमन्यु पहुँचा सैन्य में अति चाव से।
स्वर्गीय साहस देख उसका सौ गुने उत्साह से,
भरने लगे सब सैनिकों के हृदय हर्ष-प्रवाह से।।
फिर पाण्डवों के मध्य में अति भव्य निज रथ पर चढ़ा,
रणभूमि में रिपु सैन्य सम्मुख वह सुभद्रा सुत बढ़ा।
पहले समय में ज्यों सुरों के मध्य में सजकर भले;
थे तारकासुर मारने गिरिनन्दिनी-नन्दन चले।।
वाचक ! विचारो तो जरा उस समय की अद्भुत छटा
कैसी अलौकिक घिर रही है शूरवीरों की घटा।
दुर्भेद्य चक्रव्यूह सम्मुख धार्तराष्ट्र रचे खड़े,
अभिमन्यु उसके भेदने को हो रहे आतुर बड़े।।
तत्काल ही दोनों दलों में घोर रण होने लगा,
प्रत्येक पल में भूमि पर वर वीर-गण सोने लगा !
रोने लगीं मानों दिशाएँ हो पूर्ण रण-घोष से,
करने लगे आघात सम्मुख शूर-सैनिक रोष से।।

9 इस युद्ध में सौभद्र ने जो की प्रदर्शित वीरता,
अनुमान से आती नहीं उसकी अगम गम्भीरता।
जिस धीरता से शत्रुओं का सामना उसने किया,
असमर्थ हो उसके कथन में मौन वाणी ले लिया।
करता हुआ कर-निकर दुर्द्धर सृष्टि के संहार को,
कल्पान्त में सन्तप्त करता सूर्य ज्यों संसार को-
सब ओर त्यों ही छोड़कर जिन प्रखरतर शर-जाल को,
करने लगा वह वीर व्याकुल शत्रु-सैन्य विशाल को !
शर खींच उसने तूण से कब किधर सन्धाना उन्हें;
बस बिद्ध होकर ही विपक्षी वृन्द ने जाना उन्हें।
कोदण्ड कुण्डल-तुल्य ही उसका वहाँ देखा गया,
अविराम रण करता हुआ वह राम सम लेखा गया।
कटने लगे अगणित भटों के रण्ड-मुण्ड जहाँ तहाँ,
गिरने लगे कटकर तथा कर-पद सहस्त्रों के वहाँ।
केवल कलाई ही कौतूहल-वश किसी की काट दी,
क्षण मात्र में ही अरिगणों से भूमि उसने पाट दी।
करता हुआ वध वैरियों का वैर शोधन के लिए,
रण-मध्य वह फिरने लगा अति दिव्यद्युति धारण किए।
उस काल सूत सुमित्र के रथ हाँकने की रीति से,
देखा गया वह एक ही दस-बीस-सा अति भीति से।
उस काल जिस जिस ओर वह संग्राम करने को क्या,
भगते हुए अरि-वृन्द से मैदान खाली हो गया !
रथ-पथ कहीं भी रुद्ध उसका दृष्टि में आया नहीं;
सम्मुख हुआ जो वीर वह मारा गया तत्क्षण वहीं।



**10** ज्यों भेद जाता भानु का कर अन्धकार-समूह को,
वह पार्थ-नन्दन घुस गया त्यों भेद चक्रव्यूह को।
थे वीर लाखों पर किसी से गति न उसकी रुक सकी,
सब शत्रुओं की शक्ति उसके सामने सहसा थकी।।
पर साथ भी उसके न कोई जा सका निज शक्ति से,
था द्वार रक्षक नृप जयद्रथ सबल शिव की शक्ति से।
अर्जुन बिना उसको न कोई जीत सकता था कहीं,
थे किन्तु उस संग्राम में भवितव्यता-वश वे नहीं।।
तब विदित कर्ण-कनिष्ठ भ्राता बाण बरसा कर बड़े,
''रे खल ! खड़ा रह'' वचन यों कहने लगा उससे कड़े।
अभिमन्यु ने उसको श्रवण कर प्रथम कुछ हँसभर दिया।
फिर एक शर से शीघ्र उसका शीश खण्डित कर दिया।
यों देख मरते निज अनुज को कर्ण अति क्षोभित हुआ,
सन्तप्त स्वर्ण-समान उसका वर्ण अति शोभित हुआ,
सौभद्र पर सौ बाण छोड़े जो अतीव कराल थे,
अतः ! बाण थे वे या भयंकर पक्षधारी व्याल थे।।
अर्जुन-तनय ने देख उनको वेग से आते हुए,
खण्डित किया झट बीच में ही धैर्य दिखलाते हुए,
फिर हस्तलाघव से उसी क्षण काट के रिपु चाप को,
रथ, सूत्र, रक्षक नष्ट कर सौंपा उसे सन्ताप को।
यों कर्म को हारा समझकर चित्त में अति क्रुद्ध हो,
दुर्योधनात्मक वीर लक्ष्मण या गया फिर युद्ध को।
सम्मुख उसे अवलोक कर अभिमन्यु यों कहने लगा,
मानो भयंकर सिन्धु-नद तोड़कर बहने लगा-

**11** ‘‘तुम हो हमारे बन्धु इससे हम जताते हैं तुम्हें,
मत जानियो तुम यह कि हम निर्बल बताते हैं तुम्हें,
अब इस समय तुम निज जनों को एक बार निहार लो,
यम-धाम में ही अन्यथा होगा मिलाप विचार लो।’’
उस वीर को, सुनकर वचन ये, लग गई बस आग-सी,
हो क्रुद्ध उसने शक्ति छोड़ी एक निष्ठुर नाग सी।।
अभिमन्यु ने उसको विफल कर ‘पाण्डवों की जय’ कही
फिर शर चढ़ाया एक जिसमें ज्योति-सी थी जग रही।
उस अर्धचन्द्राकार शर ने छूट कर कोदण्ड से,
छेदन किया रिपु-कण्ठ तत्क्षण फलक धार प्रचण्ड से,
होता हुआ इस भाँति भासित शीश उनका गिर पड़ा,
होता प्रकाशित टूट कर नक्षत्र ज्यों नभ में बड़ा।।
तत्काल हाहाकार-युत-रिपु-पक्ष में दुख-सा छा गया।
फिर दुष्ट दुःशासन समर में शीघ्र सम्मुख आ गया।
अभिमन्यु उसको देखते ही क्रोध से जलने लगा,
निश्वास बारम्बार उसका उष्णतर चलने लगा।
रे रे नराधम नारकी ! तू था बता अब तक कहाँ ?
मैं खोजता फिरता तुझे सब ओर कब से कहूँ यहाँ।
यह देख, मेरा बाण तेरे प्राण-नाश निमित्त है,
तैयार हो, तेरे अघों का आज प्रायश्चित है।
अब सैनिकों के सामने ही आज वध करके तुझे,
संसार में माता-पिता से है उऋण होना मुझे।
मेरे करों से अब तुझे कोई बचा सकता नहीं।
पर देखना, रणभूमि से तू भाग मत जाना कहीं।



**12** कह यों वचन अभिमन्यु ने छोड़ा धनुष से बाण को,
रिपु भाल में वह घुस गया झट भेद शीर्ष-त्राण को,
तब रक्त से भीगा हुआ वह गिर पड़ा पाकर व्यथा,
सन्ध्या समय पश्चिम-जलधि में अरुण रवि गिरता यथा
मूर्च्छित समझ उसको समर से ले गया रथ सारथी,
लड़ने लगा तब नृप बृहद्बल उचित नाम महारथी।
कर खेल क्रीड़ासक्त हरि ज्यों मारता करि को कभी,
मारा उसे अभिमन्यु ने त्यों छिन्न करके तनु सभी।।
उस एक ही अभिमन्यु से यों युद्ध जिस जिस ने किया।
मारा गया अथवा समर से विमुख होकर जिया।
जिस भाँति विद्युतद्दाम से होती सुशोभित घन-घटा,
सर्वत्र छिटकाने लगा वह समर में शस्त्रच्छटा।।
तब कर्ण द्रोणाचार्य से साश्चर्य यों कहने लगा-
‘‘आचार्य देखो तो नया यह सिंह सोते से जगा।
रघुवर-विशिख से सिन्धु सम सब सैन्य इससे व्यस्त हैं !
यह पार्थ-नन्दन पार्थ से भी धीर वीर प्रशस्त है !
होना विमुख संग्राम से है पाप वीरों को महा,
यह सोचकर ही इस समय ठहरा हुआ हूँ मैं यहाँ।
जैसे बने अब मारना ही योग्य इसको है यहीं,
सच जान लीजे अन्यथा निस्तार फिर होगा नहीं।’’
वीराग्रणी अभिमन्यु ! तुम हो धन्य इस संसार में,
शत्रु भी यों मग्न हों जिसके शौर्य-पारावार में,
होता तुम्हारे निकट निष्प्रभ तेज शशि का, सूर का,
करते विपक्षी भी सदा गुण-गान सच्चे सूर का।

**13** तब सप्त रथियों ने वहाँ रत हो महा दुष्कर्म में -
मिलकर किया आरम्भ उसको बिद्ध करना मर्म में -
कृप, कर्ण, दु:शासन, सुयोधन, शकुनि, सुत-युत द्रोण भी;
उस एक बालक को लगे वे मारने बहु-विध सभी ।।
अर्जुन-ताने अभिमन्यु तो भी अचल सम अविचल रहा,
उन सप्त राथियोंका वहाँ आघात उसने सब सहा।
पर एक साथ प्रहार-करता हो चतुर्दश कर जहाँ,
युग कर कहो, क्या क्या यथायथ कर सके विक्रम वहाँ ?
कुछ देर में जब रिपु-शरों से अश्व उसके गिर पड़े,
तब कूद कर रथ से चला वह, थे जहाँ वे सब खड़े।
जब तक शरीरागार में रहते ज़रा भी प्राण हैं,
करते समर से वीरजन पीछे कभी न प्रयाण हैं ।।
फिर नृत्य-सा करता हुआ धन्वा लिए निज हाथ में,
लड़ने लगा निर्भय वहाँ वह शूरता के साथ में।
था यदपि अन्तिम दृश्य यह उसके अलौकिक कर्म का,
पर मुख्या परिचय भी यही था वीरजन के धर्म का ।।
होता प्रविष्ट मृगेंद्र-शावक ज्यों गजेन्द्र-समूह में,
करने लगा वह शौर्य त्यों उन वैरियों के व्यूह में।
तब छोड़ते कोदण्ड से सब ओर चंड-शरावली,
मार्तण्ड-मण्डल की उदय की छवि मिली उसको भली ।।
यों विकत विक्रम देख उसका धैर्य रिपु खोने लगे,
उसके भयंकर वेग से अस्थिर सभी होने लगे।
हँसने लगा वह वीर उनकी धीरता यह देख के,
फिर यों वचन कहने लगा तृण-तुल्य उनको लेख के –



**14** "मैं वीर तुम बहु सहचरों से युक्त विश्रत सात हो,
एकत्र फिर अन्याय से करते सभी आघात हो।
होते विमुख तो भी अहो! झिलता न मेरा वार है,
तुम वीर कैसे हो, तुम्हें धिक्कार सौ-सौ बार है।"
उस शूर के सुन यों वचन बोला सुयोधन आप यों -
"है काल अब तेरा निकट करता अनर्थ प्रलाप क्यों?
जैसे बने निज वैरियों के प्राण हरना चाहिए,
निज मार्ग निष्कंटक सदा सब भाँति करना चाहिए ।।"
"यह कथन तेरे योग्य ही है," प्रथम यों उत्तर दिया,
खर-तर-शरों से फिर उसे अभिमन्यु ने मूर्छित किया।
उस समय ही जो पार्श्व से छोड़ा गया था तान के,
उस करना-शर ने चाप उसका काट डाला आन के ।।
तब खींचकर खर-खड्ग फिर वह रत हुआ रिपु-नाश में,
चमकीं प्रलय की बिजलियाँ घनघोर-समराकाश में।
पर हाय! वह आलोक-मण्डल अल्प ही मण्डित हुआ,
वंचक-विपक्षी वृन्द से वह खड्ग भी खण्डित हुआ।
यों रित्त-हस्त हुआ जहाँ वह वीर रिपु-संघात में,
घुसने लगे सब शत्रुओं के बाण उसके गात में।
वह पाण्डु-वंश प्रदीप यों शोभी हुआ उस काल में -
सुंदर सुमन ज्यों पड़ गया हो कंटकों के जाल में ।।
संग्राम में निज-शत्रुओं की देखकर यह नीचता
कहने लगा वह यों वचन दृग युग-करों से मींचता -
"नि:शस्त्र पर तुम वीर बनकर वार करते हो अहो!
है पाप तुमको देखना भी पामरों! सम्मुख न हो!!

**15** दो शस्त्र पहले तुम मुझे, फिर युद्ध सब मुझसे करो,
यों स्वार्थ-साधन के लिए मत पाप-पथ में पड़ धरो।
कुछ प्राण-भिक्षा मैं न तुमसे माँगता हूँ भीति से,
बस शस्त्र ही मैं चाहता हूँ धर्म-पूर्वक नीति से ॥
कर में मुझे तुम शस्त्र देकर फिर दिखाओ वीरता,
देखूँ, यहाँ मैं फिर तुम्हारी धीरता, गंभीरता।
हो सात क्या, सौ भी रहो तो भी रुलाऊँ मैं तुम्हें,
कर पूर्ण रण-लिप्सा अभी क्षण में सुलाऊँ मैं तुम्हें ॥
नि:शस्त्र पर आघात करना सर्वथा अन्याय है।
स्वीकार करता बात यह सब शूर-जन समुदाय है।
पर जानकर भी हा! इसे आती न तुमको लाज है,
होता कलंकित आज तुमसे शूरवीर-समाज है ॥
हैं नीच ये सब शूर पर 'आचार्य!" तुम आचार्य हो,
वरवीर-विद्या-विज्ञ मेरे तात-शिक्षक आर्य हो।
फिर आज इनके साथ तुमसे हो रहा जो कर्म है,
मैं पूछता हूँ, वीर का रण में यही क्या धर्म है ?
या सत्य है कि अधर्म से मैं निहित होता हूँ अभी,
पर शीघ्र इस दुष्कर्म हा तुम दण्ड पाओगे सभी।
क्रोधाग्नि ऐसी पाण्डवों की प्रज्ज्वलित होगी यहाँ,
तुम शीघ्र उसमें भस्म होगे तूल-तुल्य जहाँ तहां ॥
मैं तो अमर होकर यहाँ अब शीघ्र सुरपुर को चला,
पर याद रखो, पाप का होता नहीं है फल भला।
तुम और मेरे अन्य रिपु पामर कहावेंगे सभी,
सुनकर चरित मेरा सदा आँसू बहावेंगे सभी ॥



**16** हे तात! हे मातुल! जहाँ हो प्रणाम तुम्हें वहीं,
अभिमन्यु का इस भाँति मरना भूल न जाना कहीं!"
कहता हुआ वह वीर यों रण-भूमि में फिर गिर पड़ा,
हो भंग श्रृंग सुमेरु गिरी का गिर पड़ा हो ज्यों बड़ा ॥
इस भाँति उसको भूमि पर देखा पतित होते यदा,
दु:शील दु:शासन ताने ने शीश में मारी गदा।
दृग बंद कर वह यशोधन सर्वदा को सो गया,
हा! एक अनुपम रत्न मानो मेदिनी का खो गया ॥
हे वीरवर अभिमन्यु! अब तुम हो यदपि सुर-लोक में,
पर अंत तक रोते रहेंगे हम तुम्हारे शोक में।
दिन-दिन तुम्हारी कीर्ति का विस्तार होगा विश्व में,
तब शत्रुओं के नाम पर धिक्कार होगा विश्व में ॥

## द्वितीय सर्ग

**17** इस भाँति पाई वीरगति सौभद्र ने संग्राम में,
होने लगे उत्सव निहत भी शत्रुओं के धाम में।
पर शोक पाण्डव-पक्ष में सर्वत्र ऐसा छा गया,
मानो अचानक सुखद जीवन-सार सर्व बिला गया॥
प्रिय-मृत्यु का अप्रिय महा-संवाद पाकर विष-भरा,
चित्रस्थ-सी निर्जीव मानो रह गई हट उत्तरा!
संज्ञा-रहित तत्काल ही फिर वह धरा पर गिर पड़ी,
उस काल मूर्च्छा भी अहो! हितकर हुई उसको बड़ी॥
कुछ देर तक दुर्दैव ने रहने न दी यह भी दशा,
झट दासियों से की गयी जागृत वहाँ वह परवशा।
तब तपन नामक नरक से भी यातना पाकर कड़ी,
विक्षिप्त-सी तत्क्षण शिविर से निकल कर वह चल पड़ी॥
अपने जनों द्वारा उठाकर समर से लाये हुए,
व्रण-पूर्ण निष्प्रभ और शोणित-पंक से छाये हुए,
प्राणेणा-शव के निकट जाकर चरम दुःख सहती हुई,
वह नव-वधु फिर गिर पड़ी "हा नाथ! हा" कहती हुई॥
इसके अनंतर अंक में रखे हुए सुस्नेह से,
शोभित हुई इस भाँति वह निर्जीव पति के देह से -
मनो निदाधारम्भ में संतप्त आतप जाल से,
छादित हुई विपिनस्थली नव-पतित किंशुक-शाल से।



**18** फिर पीटकर सिर और छाती अश्रु बरसाती हुई,
कुररी-सदृश सकरुण गिरा से दैन्य दरसाती हुई,
बहु-विध विलाप-प्रलाप वह करने लगी उस शोक में,
निज प्रिया वियोग समान दुःख होता न कोई लोक में॥
"मति, गति, सुकृति, धृतिपूज्य, पति, प्रिय, स्वजन, शोभन, संपदा,
हा! एक ही जो विश्व में सर्वस्व था तेरा सदा।
यों नष्ट उसको देखकर भी बन रहा तू भार है!
हे कष्टमय जीवन! तुझे धिक्कार बारम्बार है॥
था जो तुम्हारसब सुखों का सार इस संसार में,
वह गत हुआ है अब यहाँ से श्रेष्ठ स्वर्गागार में।
हे प्राण! फिर अब किसलिए ठहरे हुए हो तुम अहो!
सुख छोड़ रहना चाहता है कौन जन दुःख में कहो?
अपराध सौ-सौ सर्वदा जिसके क्षमा करते रहे,
हँसकर सदा सस्नेह जिनके ह्रदय को हरते रहे,
हा! आज उस-मुझ किंकरी को कौन से अपराध में -
हे नाथ! तजते हो यहाँ तुम शोक-सिन्धु अगाध में।
तज दो भले ही तुम मुझे, मैं तज नहीं सकती तुम्हें,
वह थल कहाँ पर है जहाँ मैं भज नहीं सकती तुम्हें?
है विदित मुझको वह्नि-पथ त्रैलोक्य में तुम हो कहीं,
हम नारियों की पति बिना गति दूसरी होती नहीं॥
जो 'सहचरी' का पद तुमने दया कर था दिया,
वह था तुम्हारा इसलिए प्राणेश! तुमने ले लिया,
पर जो तुम्हारी 'अनुचरी' का पुण्य-पद मुझको मिला,
है दूर हरना तो उसे सकता नहीं कोई हिला।

**19** क्या बोलने के योग्य भी अब मैं नहीं लेखी गई?
ऐसी न पहले तो कभी प्रतिकूलता देखी गई!
वे प्रणय-सम्बन्धी तुम्हारे प्रण अनेक नए-नए,
हे प्राणवल्लभ, आज हा! सहसा समस्त कहाँ गए?
है याद? उस दिन जो गिरा तुमने कही थी मधुमयी,
जब नेत्र कौतुक से तुम्हारे मूँदकर मैं रह गई।
'यह पाणि-पद्म स्पर्श' मुझसे छिप नहीं सकता कहीं,
फिर इस समय क्या नाथ मेरे हाथ वे ही हैं नहीं?
एकांत में हँसते हुए सुंदर रदों की पाँति से,
धर चिबुक मम रूचि पूछते थे नित्य तुम बहु भाँति से ।।
वह छवि तुम्हारी उस समय की याद आते ही वहीं,
हे आर्यपुत्र! विदीर्ण होता चित्त जाने क्यों नहीं ।।
परिणय-समय मण्डप तले सम्बन्ध दृढ़ता-हित-अहा!
ध्रुव देखने को वचन मुझसे नाथ! तुमने था कहा।
पर विपुल व्रीडा-वश न उसका देखना मैं कह सकी
संगति हमारी क्या इसी से ध्रुव न हा! हा! रह सकी?
बहु भाँति सुनकर सु-प्रशंसा और उसमें मन दिए -
सुरपुर गए हो नाथ, क्या तुम अप्सराओं के लिए?
पर जान पड़ती है मुझे यह बात मन में भ्रम-भरी,
मेरे समान न मानते थे तुम किसी को सुंदरी ।।
हाँ अप्सराएँ आप तुम पर मर रही होंगी वहाँ,
समता तुम्हारे रूप की त्रैलोक्य में रखी कहाँ?
पर प्राप्ति भी उनकी वहाँ भाती नहीं होगी तुम्हें?
क्या याद हम सबकी वहाँ आती नहीं होगी तुम्हें?



**20** यह भुवन ही इन्द्र कानन कर्म वीरों के लिए,
कहते सदा तुम तो यही थे - धन्य हूँ मैं हे प्रिये!
यह देव दुर्लभ, प्रेममय मुझको मिला प्रिय वर्ग है,
मेरे लिए संसार ही नंदन-विपिन है, स्वर्ग है ।।
जो भूरि-भाग भरी विदित थी निरुपमेय सुहागिनी,
हे हृदय्वल्लभ! हूँ वही मैं महा हतभागिनी!
जो साथिनी होकर तुम्हारी थी अतीव सनाथिनी,
है अब उसी मुझ-सी जगत में और कौन अनाथिनी?
हा! जब कभी अवलोक कुछ भी मौन धारे मान से,
प्रियतम! मनाते थे जिसे तुम विविध वाक्य-विधान से।
विह्वल उसी मुझको अहा! अब देखते तक हो नहीं,
यों सर्वदा ही भूल जाना है सुना न गया कहीं ।।
मैं हूँ वही जिसका हुआ था ग्रंथि-बंधन साथ में,
मैं हूँ वही जिसका लिया था हाथ अपने हाथ में;
मैं हूँ वही जिसको किया था विधि-विहित अर्द्धांगिनी,
भूलो न मुझको नाथ, हूँ मैं अनुचरी चिरसंगिनी ।।
जो अन्गारागांकित रुचिर सित-सेज पर थी सोहती,
शोभा अपार निहार जिसको मैं मुदित हो मोहती,
तव मूर्ती क्षत-विक्षत वही निश्चेष्ट अब भू पर पड़ी!
बैठी तथा मैं देखती हूँ हाय री छाती कड़ी!
हे जीवितेश! उठो, उठो, यह नींद कैसी घोर है,
है क्या तुम्हारे योग्य, यह तो भूमि-सेज कठोर है!
रख शीश मेरे अंक में जो लेटते थे प्रीति से,
यह लेटना अति भिन्न है उस लेटने की रीति से ।।

21 कितनी विनय मैं कर रही हूँ क्लेश से रोते हुए,
सुनते नहीं हो किंतु तुम बेसुध पड़े सोते हुए!
अप्रिय न मन से कभी, मैंने तुम्हारा है किया,
हृदयेश! फिर इस भाँति क्यों निज हृदय निर्दय कर लिया?
होकर रहूँ किसकी अहो! अब कौन मेरा है यहाँ?
कह दो तुम्हीं बस न्याय से अब ठौर है मुझको कहाँ?
माता-पिता आदिक भले ही और निज जन हों सभी,
पति के बिना पत्नी सनाथा हो नहीं सकती कभी।।
रोका बहुत था हाय! मैंने 'जाएये मत युद्ध में,'
माना न किंतु तुमने कुछ भी निज विपक्ष-विरुद्ध में।
हैं देखते यद्यपि जगत में दोष अर्थी जन नहीं,
पर वीर जन निज नियम से विचलित नहीं होते कहीं।।
किसका करूंगी गर्व अब मैं भाग्य के विस्तार से?
किसको रिझाऊंगी अहो! अब नित्य नव-श्रृंगार से?
ज्ञाता यहाँ अब कौन है मेरे हृदय के हाल का?
सिन्दूर-बिन्दु कहाँ चला हा! आज मेरे भाल का?
हा! नेत्र-युत भी अंध हूँ वैभव-सहित भी दीन हूँ,
वाणी-विहित भी मूक हूँ, पड़-युक्त भी गतिहीन हूँ,
हे नाथ! घोर विडम्बना है आज मेरी चातुरी,
जीती हुई भी तुम बिना मैं हूँ मरी से भी बुरी।।
जो शरण अशरण के सदा अवलम्ब जो गतिहीन के,
जो सुख दुखिजन के, यथा जो बंधू दुर्विध दीन के,
चिर शान्तिदायक देव हे यम! आज तुम, ही हो कहाँ?
लोगे ने क्या हा हन्त! तुम भी सुध स्वयं मेरी यहाँ?"



22 कहती हुई बहु भाँति यों ही भारती करुणामयी,
फिर भी मूर्छित अहो वह दु:खिनी विधवा नई,
कुछ देर को फिर शोक उसका सो गया मानो वहाँ,
हतचेत होना भी विपद में लाभदायी है महा।।
उस समय ही कृष्णा, सुभद्रा आदि पाण्डव-नारियाँ,
मनो असुर-गण-पीड़िता सुरलोक की सुकुमारियाँ,
करती हुई बहु भाँति क्रंदन आ गईं सहसा वहाँ,
प्रत्यक्ष ही लक्षित हुआ तब दुःख दुस्सह-सा वहाँ।
विचलित न देखा था कभी जिनको किसी ने लोक में,
वे नृप युधिष्ठिर भी स्वयं रोने लगे इस शोक में।
गाते हुए अभिमन्यु के गुण भाइयों के संग में,
होने लगे वे मग्न-से आपत्ति-सिन्धु-तरंग में।।
"इस अति विनश्वर-विश्व में दुःख-शोक कहते हैं किसे?
दुःख भोगकर भी बहुत हमने आज जाना है इसे,
निश्चय हमें जीवन हमारा आज भारी हो गया,
संसार का सब सुख हमारा आज सहसा खो गया।
हा! क्या करें? कैसे रहे? अब तो रहा जाता नहीं,
हा! क्या कहें? किससे कहें? कुछ भी कहा जाता नहीं।
क्योंकर सहें इस शोक को? यह तो सहा जाता नहीं;
हे देव, इस दुःख-सिन्धु में अब तो बहा जाता नहीं।।
जिस राज्य के हित शत्रुओं से युद्ध है यह हो रहा,
उस राज्य को अब इस भुवन में कौन भोगेगा अहा!
हे वत्सवर अभिमयु! वह तो था तुम्हारे ही लिए,
पर हाय! उसकी प्राप्ति के ही समय में तुम चल दिए!

23 जितना हमारे चित्त को आनंद था तुमने दिया,
हा! अधिक उससे भी उसे अब शोक से व्याकुल किया।
हे वत्स बोलो तो ज़रा, सम्बन्ध तोड़ कहाँ चले?
इस शोचनीय प्रसंग में तुम संग छोड़ कहाँ चले?
सुकुमार तुमको जानकर भी युद्ध में जाने दिया,
फल योग्य ही हे पुत्र! उसका शीघ्र हमने पा लिया।।
परिणाम को सोच बिना जो लोग करते काम हैं;
वे दुःख में पड़कर कभी पाते नहीं विश्राम हैं।।
तुमको बिना देखे अहो! अब धैर्य हम कैसे धरें?
कुछ जान पड़ता है नहीं हे वत्स! अब हम क्या करें?
है विरह यह दुस्सह तुम्हारा हम इसे कैसे सहें?
अर्जुन, सुभद्रा, द्रौपदी से हाय! अब हम क्या कहें?"
हैं ध्यान भी जिनका भयंकर जो न जा सकते कहे,
यद्यपि दृढ़-व्रत पाण्डवों ने थे अनेकों दुःख सहे,
पर हो गए वे हीन-से इस दुःख के सम्मुख सभी,
अनुभव बिना जानी न जाती बात कोई भी कभी।।
यों जान व्याकुल पाण्डवों को व्यास मुनि आए वहाँ -
कहने लगे इस भाँति उनसे वचन मन भाये वहाँ -
"हे धर्मराज! अधीर मत हो, योग्य यह तुमको नहीं,
कहते भले क्या विधि-नियम पर मोह ज्ञानीजन कहीं?"
यों बादरायण के वचन सुन, देखकर उनको तथा,
कहने लगे उनसे युधिष्ठिर और भी पाकर व्यथा -
"धीरज धरूँ हे तात कैसे? जल रहा मेरा हिया,
क्या हो गया यह हाय! सहसा दैव ने यह क्या किया?



24 जो सर्वदा ही शून्य लगाती आज हम सबको धरा,
जो नाथ-हीन अनाथ जग में हो गई है उत्तरा।
हूँ हेतु इसका मुख्य मैं ही हा! मुझे धिक्कार है,
मत धर्मराज कहो मुझे, यह क्रूर-जन भू-भार है।।
है पुत्र दुर्लभ सर्वथा अभिमन्यु-सा संसार में,
थे सर्व गुण उस धर्मधारी धीर-वीर कुमार में।
वह बाल होकर भी मृदुल, अति प्रौढ़ था निज काम में,
बातें अलौकिक थीं सभी उस दिव्य शोभा-धाम में।।
क्या रूप में, क्या शक्ति में, क्या बुद्धि में, क्या ज्ञान में,
गुणवान वैसा अन्य जन आता नहीं है ध्यान में।
पर हाय! केवल रह गई है अब यहाँ उसकी कथा,
धिक्कार है संसार की निस्सारता को सर्वथा।।
प्रति दिवस जो इस समय आकर मोदयुत संग्राम से,
करता हृदय मेरा मुदित था भक्ति-युक्त प्रणाम से।
हा! आज वह अभिमन्यु मेरा मृतक भू पर है पड़ा,
होगा कहो मेरे लिए क्या कष्ट अब इससे बड़ा?
करने पड़ेंगे यदपि अब भी काम सब जग में हमें,
चलना पड़ेगा यदपि अब भी विश्व के मग में हमें,
सच जानिए पर अब न होगा हृदय लीन उमंग में,
सुख की सभी बातें गईं सौभद्र के ही संग में।।
उस के बिना अब तो हमें कुछ भी सुहाता है नहीं,
हा! क्या करें हा हृदय दुःख से शान्ति पाता है नहीं।
था लोक आलोकित उसी से, अब अँधेरा है हमें,
किस दोष से दुर्दैव ने इस भाँति घेरा है हमें।।

**25** अब भी मनोरम मूर्ति उसकी फिर रही है सामने,
पर साथ ही दुःख की घटा भी घिर रही है सामने,
हम देखते हैं प्रकट उसको किंतु पाते हैं नहीं,
हा! स्वप्न के वैभव किसी के काम आते हैं नहीं।।
कैसी हुई होगी अहो! उसकी दशा उस काल में -
जब वह फँसा होगा अकेला शत्रुओं के जाल में?
बस वचन ये उसने कहे थे अंत में दुःख से भरे -
"निरुपाय तब अभिमन्यु यह अन्याय से मरता हरे! -
कहकर वचन कौन्तेय यों फिर मौन दुःख से हो गए,
दृग-नीर से तत्काल युग्म कपोल उनके धो गए।
तब व्यास मुनि ने फिर उन्हें धीरज बँधाया युक्ति से,
आख्यान समयोचित सुनाये विविध उत्तम युक्ति से।
उस समय ही ससप्तकों को युद्ध में संहार के,
लौटे धनञ्जय विजय का आनंद उर में धार के।
होने लगे पर मार्ग में अपशकुन बहु बिध जब उन्हें,
खलने लगी अति चित्त में चिंता कुशल की तब उन्हें।।
कुविचार बारम्बार उनके चित्त में आने लगे,
आनंद और प्रसन्नता के भाव सब जाने लगे।
तब व्यग्र होकर वचन वे कहने लगे भगवान से,
होगी न आतुरता किसे आपत्ति के अनुमान से?
"हे मित्र? मेरा मन न जाने हो रहा क्यों व्यस्त है?
इस समय पल पल में मुझे अपशकुन करता त्रस्त है।
तुम धर्मराज समीप रथ को शीघ्रता से ले चलो,
भगवान! मेरे शत्रुओं की सब दुराशाएँ डालो??"



**26** बहु भाँति तब सर्वग्य हरि ने शीघ्र समझाया उन्हें,
सुनकर मधुर उनके वचन संतोष कुछ आया उन्हें।
पर स्वजन चिंता-रज्जु बंधन है कदापि न टूटता,
जो भाव जम जाता हृदय में वह न सहसा छूटता।।
करते हुए निज चित्त में नाना विचार नए-नए,
निज भाइयों के पास आतुर आर्त अर्जुन आ गए।
तप-तप्त तरुओं के सदृश तब देख कर तापित उन्हें,
आकुल हुए वे और भी कर कुशल विज्ञापित उन्हें।।
अवलोकते ही हरि-सहित अपने समक्ष उन्हें खड़े,
फिर धर्मराज विषाद से विचलित उसी क्षण हो पड़े।
वे यत्न से रोके हुए शोकाश्रु फिर गिरने लगे,
फिर दुःख के वे दृश्य उनकी दृष्टि में फिरने लगे।।
कहते हुए कारुण्य-वाणी दीन हो उस काल में,
देखे गए इस भाँति वे जलते हुए दुःख ज्वाल में।
व्याकुल हुए खग-वृन्द के चीत्कार से पूरित सभी -
दावाग्नि-कवलित वृक्ष ज्यों देता दिखाई है कभी।।
"हे हे जनार्दन! आपने यह क्या दिखाया है हमें?
हे देव! किस दुर्भाग्य से यह दुःख आया हैं हमें?
हा आपके रहते हुए भी आज यह क्या हो गया?
अभिमन्यु रुपी रत्न जो सहसा हमारा खो गया।।
निज राज्य लेने से हमें हे तात! अब क्या काम है?
होता अहो! फिर व्यर्थ ही क्यों यह महा-संग्राम है!
क्या यह हमारी हानि भारी, राज्य से मिट जाएगी?
त्रैलोक्य की भी सम्पदा उस रत्न को क्या पाएगी?

**27** मेरे लिए ही भेद करके व्यूह द्रोणाचार्य का;
मारे सहस्रों शूर उसने ध्यान धर प्रिय कार्य का;
पर अंत में अन्याय से निरुपाय होकर के वहाँ -
हा हन्त! वो हत हो गया, पाऊँ उसे मैं अब कहाँ?
उद्योग हम सबने बहुत उसको बचाने का किया,
पर खल जयद्रथ ने हमें भीतर नहीं जाने दिया।
रहते हुए भी सो हमारे, युद्ध में वह हत हुआ,
अब क्या रहा सर्वस्व ही हा! हा! हमारा गत हुआ,
पापी जयद्रथ पार उससे जब न रण में पा सका।
उस वीर के जीते हुए सम्मुख न जब वह जा सका।
तब मृतक उसको देख सर पर पैर रक्खा नीच ने,
हा! हा! न यों मनुजत्व को भी स्मरण रक्खा नीच ने।।
श्रीकृष्ण से जब ज्येष्ठ पाण्डव थे वचन यों कह रहे,
अर्जुन हृदय पर हाथ रक्खे थे महा-दुःख सह रहे।
'हा पुत्र!' कहकर शीघ्र ही फिर वे मही पर गिर पड़े;
क्या वज्र गिरने पर बड़े भी वृक्ष रह सकते खड़े?
जो शस्त्र शत-शत शत्रुओं के सहन करते थे कड़े,
वे पार्थ ही इस शोक के आघात से जब गिर पड़े;
तब और साधारण जनों के दुःख की है क्या कथा?
होती अतीव अपार है सुत-शोक की दु:सह व्यथा।।
यों देख भक्तों को प्रपीड़ित शोक के अति भार से,
कुछ द्रवित अच्युत भी हुए कारुण्य के संचार से!
तल-मध्य-अनल-स्फोट से भूकंप होता है जहाँ,
होते विकंपित से नहीं क्या अचल भूधर भी वहाँ?



## तृतीय सर्ग

**28** हे वत्सलांछन विष्णु तब कहकर वचन प्रज्ञा पगे,
धीरज बँधाकर पाण्डवों को शीघ्र समझाने लगे।
हरने लगे सब शोक उनका ज्ञान के आलोक में?
कुछ शांति देती है बडों की ही सात्वना ही शोक में।।
हे हे परंतप! ताप सहकर चित्त में धीरज धरे,
हे धीर भारत! हो न आरत! शोक को कुछ कम करो।
पडता समय है वीर पर ही , भीरू-कायर पर नहीं,
दृढ-भाव अपना विपद में बी भूलते बुधवर नहीं।
निज जन विरह के शोक का दुख-दाह कौन न जानता ?
पर मृत्यु का होना न जग में कौन निश्चित मानता ?
सहनी नहीं पड़ती किसे प्रिय-विरह को दुःसह व्यथा?
क्या फिर हमें कहनी पडेगी आज गीता की कथा?
आते बुरे दिन बीतने पर मनुज के जग में जहाँ,
जाते हुए कोई न कोई दुःख दे जाते वहाँ।

**29** अतएव अब निश्चय तुम्हारे उदय का आरंभ है,
होगा अधिक अब दुःख क्या? यह सब दुखों का खंभ है।
जिस ज्ञान के बल से अनेकों विपद-नद तरते रहे,
जिस ज्ञान के बल से सदा ही धर्य तुम धरते रहे,
हे बुद्धिमानों के शिरोमणि! ज्ञान अब वह है कहाँ?
अवलंब उसका ही तुम्हें लेना उचित है फिर यहाँ ॥
निश्चय विरह अभिमन्यु का दुखदाई सर्वथा,
पर सहन करनी चाहिए फिर भी किसी विध यह व्यथा।
रण में मरण क्षत्रिय जनों को स्वर्ग देता है सदा,
है कौन ऐसा विश्व में जीता रहे जो सर्वदा ?
हे वीर। देखो तो, तुम्हें यों देख कर रोते हुए !
हैं हँस रहे सब शत्रुजन मन में मुदित होते हुए।
क्या इस महा अपमान का कुछ भी न तुमको ध्यान है?
क्या ज्ञानियों को भी विपद में त्याग देता ज्ञान है?
तुम कौन हो, क्या कर रहे हो ,क्या तुम्हारा कर्म है ?
कैसा समय , कैसी दशा , कैसा तुम्हारा धर्म है?
दे अनघ ! क्या वह विज्ञता भी आज तुमने दूर की?
होती परीक्षा ताप में ही स्वर्ण के सम शूर की।
जिस बात से निज वैरियों को स्वल्प सा भी हर्ष हो है,
है योग्य उसका त्याग ही, बाधा न क्यों दुर्द्धर्ष हो।
वह वीर ही क्या, शत्रु का सुख हेतु हो जो आप ही,
निज शत्रुओं का तो बढ़ाना चाहिए संताप ही॥
निज पामरों ने सर्वदा की दुख तुमको है दिया,
षड्यंत्र रच रचकर अनेकों विभव सारा हर लिया।



**30** उन पापियों के देखते हैं योग्य क्या रोना तुम्हें।
निज शत्रु सम्मुख तो उचित है मुदित ही होना तुम्हें
निजा सहचरों का शौक तो आजन्म रहता है बना,
पर चाहिए सब को सदा कर्तव्य अपना पालना।
हे विज्ञ! सो सब सोचकर यों शक में न रहो पड़े,
लो शीघ्र बदला वैरियों से, धैय धर कर हो खड़े ,
मारा जिन्होंने युद्ध में अभिमन्यु को अन्याय से,
सर्वस्व मानो है हमारा हर लिया दूरपाय से।
हे वीरवर! इस पाप का फल क्या उन्हें दोगो नहीं?
इस बैर का बदला कहो, क्या शीघ्र तुम लोगे नहीं?
श्रीकृष्ण के सुन वचन अर्जुन क्रोध से जलने लगे,
सब शोक अपना भूलकर करतल युगल मलने लगे।
"संसार देखें अब हमारे शत्रु रण में मृत पड़े,"
करते हुए यह घोषणा वे हो गये उठकर खड़े।
उस काल मारे क्रोध के तनु का काँपने उनका लगा,
मानो हवा के जोर से सोता हुआ सागर जगा।
मुख बाल -रवि-सम लाल होकर ज्वाला-सा बोधित हुआ,
प्रलयार्थ उनके मिस वहाँ क्या काल ही क्रोधित हुआ?
युग- नेत्र उनके जो अभी थे पूर्ण जल की धारा से ,
अब रोष के मारे हुए वे दहकते अंगार- से।
निश्चय अरुणिमा-मिस अनल की जल उठी वह ज्वाला ही,
तब तो दुर्गुण का जल गया शोकाश्रु जल तत्काल ही॥
तब निकलकर नासा पुटों से व्यक्त करके रोष त्यों,
करने लगा निश्वास उनका भूरि भिषण-घोष यों-

**31** जिस भाँति हरने पर किसी के, प्राण से भी प्रिय मणि,
करके स्फुरित फिर फिर फणा फुँकार भरता है फणी।।
करतल परस्पर शोक से उनके स्वयं घर्षित हुए,
तब विस्फुरित होते हुए भुजदंड यों दर्शित हुए-
दो पद्माशुंडों में लिए दो शुंडवाला गज कहीं,
मर्दन करे उनको परस्पर तो मिले उपमा वहीं !
दुर्द्धर्ष जलते -से हुए उत्ताप के उत्कर्ष से,
कहने लगे तब वे अरिंदम वचन व्यक्त अमर्ष से।
प्रत्येक पल में चंचला को दीप्ति दमकाकर घनी,
गंभीर सागर सम य़था करते जलद घोरध्वनि ।।
"साक्षी रहे संसार, करता हूँ प्रतिज्ञा पार्थ मैं" ,
पूरा करूंगा कार्य सब कथनानुसार यथार्थ मैं।
जो एक बालक को कपट से मार हँसते हैं अभी,
वे शत्रु सत्वर शोक- सागर-मग्न दीखेंगे सभी।।
अभिमन्यु -धन के निधन में कारण हुआ जो मूल है,
इससे हमारे हत-हृदय को हो रहा जो शूल है-
उस खल जयद्रथ को जगत में मृत्यु ही अब सार है,
उन्मुक्त बस उसके लिए रौरव नरक का द्वार है।।
तज धार्तराष्ट्रों को सबेरे दीन होकर जो कहीं,
श्री कृष्ण और आजादरिपु के शरण वह होगा नहीं ,
तो काल भी चाहे स्वयं हो जाय उसके पक्ष में.
तो भी उसे मैं वध करूंगा प्राप्त कर शर-लक्ष्य में।।
सुर, नर ,असुर, गंधर्व, किन्नर आदि कोई भी कहीं ,
कल शाम तक मुझसे जयद्रथ को बचा सकते नहीं ।



**32** चाहे चराचर विश्व भी उसके कुशल-हित हो खड़ा,
भू-लुंठित कलरव तुल्य उसका शीश लौटेगा पड़ा।
उपयुक्त खल को न यद्यपि मृत्यु का भी दंड है,
पर मृत्यु से बढ़कर जग में दंड और प्रचंड है ।
अतएव कल उस नीच को रण-मध्य जो मारुँ न मैं,
तो सत्य कहता हूँ कभी शस्त्रास्त्र फिर धारूँ न मै ।।
हे देव अच्युत, आपके सम्मुख प्रतिज्ञा है यही,
मैं कल जयद्रथ-वध करूँगा, वचन करता हूँ सही,
यदि मारकर कल मैं उसे यमलोक पहुँचाऊँ नहीं,
तो पुण्य-गति को मैं कभी परलोक में पाऊँ नहीं।।
पापी जयद्रथ ! हो चुका तेरा वयोविस्तार है,
मेरे करों से अब नहीं तेरा कहीं निस्तार है।
दुर्वृत्त ! तेरा त्राण कोई कर नहीं सकता कहीं,
वीर-प्रतिज्ञा विश्व में होती असत्य कभी नहीं।
विषधर बनेगा रोष मेरा खल ! तुझे पाताल में
दावाग्नि होगा विपिन में वाड़व जलधि-जल-जाल में।
जो व्योम में तू जाएगा तो वज्र वह बन जाएगा,
चाहे जहाँ जाकर रहे जीवित न तू रह पाएगा।।
छोटे बड़े जितने जगत में पुण्य नाशक पाप है,
लौकिक तथा जो पारलौकिक तीक्ष्णतर संताप हैं।
हों प्राप्त वे सब सर्वदा को तो विलंब बिना मुझे,
कल युद्ध में संध्या समय तक जो न मैं मारूँ तुझे।
अथवा अधिक कहना वृथा है, पार्थ का प्रण है यही,
साक्षी रहे सुन ये वचन रवि, शशि, अनल, अंबर, मही।

**33** सूर्यास्त से पहले न जो मैं कल जयद्रथ वध करूँ,
तो शपथ करता हूँ स्वयं मैं अनल में जल मरूँ।।
करके प्रतिज्ञा यों किरीटी क्रोध के उद्गार से,
करने लगे घोषित दिशाएँ धनुष की टंकार से ।
उस समय उनकी दीप्ति ने वह दृश्य याद करा दिया,
जब सारंगपाणि उपेंद्र ने था रोष असुरों पर किया।।
सुन पार्थ का प्राण रौद्र रस में वीर सब बहने लगे,
कहा साधु-साधु प्रसन्न हो श्रीकृष्ण फिर कहने लगे-
"यह भारती है वीर भारत ! योग्य ही तुमने कहीं,
निज वैरियों के विषय में कर्तव्य है समुचित यही। "
इसके अनंतर मुदित माधव कंबू रव करने लगे।
प्राण के विषय में पांडवों का सोच-सा हरने लगे।
प्रिय पांचजन्य करस्थ हो मुख-लग्न यों शोभित हुआ,
कल-हंस मानों कंज-वन में आ गया लोभित हुआ।।
फिर भीम-अर्जुन आदि भी निज शंख-रव करने लगे।
पीछे उन्हीं के सैन्य में रण-वाद्य मन हरने लगे।
तब गूँजकर वह घोर-रव सब ओर यों भरने लगा,
मानो चराचर विश्व को ही नादमय करने लगा।।
करके श्रवण उस नाद को कौरव बहुत शंहित हुए,
नाना नवीन विचार उनके चित्त में अंकित हुए।
पार्थ-प्रतिज्ञा भी उन्होंने दूत के द्वारा सुनी,
ज्यों दैत्य-गण जिष्णु-जय जीमूत के द्वारा सुनी।।
ग्रीष्मांत में घन नाद सुनकर भीत हंस ज्यों,
व्याकुल हुआ यह बात सुनकर सिंधुराज नृशंस त्यों।



34 प्रत्यक्ष-सा निज रूप उसको मृत्यु दिखालाने लगी,
दावाग्नि-सी बढ़ती हुई वह निकटतर आने लगी।।
कर्तव्य-मूढ़ समान वह चिंताग्नि में जलने लगा,
निजा कृत्य बारंबार उसको चित्त में खलने लगा।
देखा न और पदार्थ कोई प्राण से प्यारा कहीं,
हे वस्तु अप्रिय अन्य जग में मृत्यु से बढ़कर नहीं।।
संसार में आशा उसे कुछ भी न जीवन की रही,
बस दीखने उसको लगी निज मृत्यमय सारी मही ।
तब वह सुयोधन के निकट आया फँसा भय-जाल में,
गति है न अन्य सूहृज्जनों से भिन्न आपात्काल में।।
कारण समझकर भी उसे व्याकुल विलोका जब वहाँ,
पूछा सुयोधन ने स्वयं भय हेतु उससे तब वहाँ।
होकर चकित-सा थकित-सा सर्वस्व से जाकर ठगा,
भय से विकृत अप्राकृत स्वयं से वचन वह कहने लगा-
"जो प्रण किया है पार्थ ने सुत-शोक के संताप से,
हे कुरुकुलोत्तम ! क्या अभी तक वह छिपा है आपसे ?
मारूँ जयद्रथ को ना कल मैं तो अनल में जल मरूँ,
की है यही उसने प्रतिज्ञा, अब कहो मैं क्या करूँ ?
कर्तव्य अपना इस समय होता न मुझको ज्ञात है,
भय और चिंता-युक्त मेरा जल रहा सब गात है।
अतएव मुझको अभय देकर आप रक्षित कीजिए,
या पार्थ-प्रण करने विफल अन्यत्र जाने दीजिए।।
मैं सत्य कहता हूँ, नहीं है मृत्यु की शंका मुझे,
सब दीप्त जीवन-दीप बुझते हैं बुझेंगे, है बुझे ।
है किंतु मुझको चित्त में प्रबल केवल यही,
अब देख पाऊँगा तुम्हारी मैं न निष्कंटक मही ।।

**35** इस भांति उसकी सुन वचन ना करो राज बोला प्रेम से-
हे वीर तुम निर्भय तथा निशंक सोओ शेम से।
जब तक हमारे पक्ष का जन्म यह कभी जीवन धरे,
है कौन ऐसा जो तुम्हारा बाल भी भांग का करें?
यह हमारे भाग्य से ही है धनंजय ने किया,
करण आदि के रहते हुए क्या वह सफलता पाएगा?
कल शाम को जलकर अनिल में वह स्वयं मर जाएगा।
अर्जुन बिना जीवित रहेंगे धर्मराज नहीं कभी,
सो यो स्वयं सी ऋतु हमारे नष्ट अब होंगे सभी ।
कृप, करना द्रोणाचार्य जिसके कारण के हित हो खड़े,
बस जान लो सब शत्रु उसके मृत्यु के मुख में पड़े।।
अन्यत्र जाने की अपेक्षा योग्य है रहना यही,
रक्षा तुम्हारी विश्व में अन्यत्र संभव है नहीं।
द्रोण करण कृपा भी से बलवान है कोई?
रक्षक जहां आत्मीय जन को हो योग्य है रहना वही।।
कह कर वचन को राजनीति जब उससे धीरज दिया,
हो स्वस्थ तब उसने नृपति का बहुत अभिनंदन किया।
कर्णादि ने भी दूर की बहु भाँति उसकी यन्त्रणा,
करने लगे फिर अंत में सब युद्ध विषयक मंत्रणा।।

0 0 0 0

इस ओर देखकर पांडवों को शांतिदायी सांत्वना,
सौभद्र-शव-संस्कार की, श्री कृष्ण ने की योजना।
कृष्णादि से वेष्ठित उसे भगवान ने देखा तथा,
मुरझी लताओं लताओं के निकट सूखा प्रसून पड़ा यथा।।



**36** कृष्णा, सुभद्रा आदि को अवलोककर रोते हुए,
हरि के हृदय में भी वहां कुछ-कुछ करुणा-रस करना चुए।
आते हुए अवलोक उनको देखभान बिसार के,
बोली सुभद्रा-मृतकवत्स गो-समान-पुकार के।।
"भैया, कहो मेरे दृगों का आज तारा है कहाँ?
मुझ दुखिनी हतभागिनी का सौख्या सारा है कहाँ ?
संपूर्ण-गुण-संपन्न वह अनुचर तुम्हारा है कहाँ ?
हा ! पांडुवंश-प्रदीप अब अभिमन्यु प्यारा है कहाँ ?
भैया, तुम्हें क्या विश्व में मुझको दिखाना था कहीं?
हा ! जल गया यह हत हृदय दृग ज्योती रही।
तव काल गति के मार्ग में अभिमन्यु हा था क्या अहो !
करुणानिधे करुणा तुम्हारी हाय यह कैसी कहो? "
रोने लगी कह यों सुभद्रा, दुख वेग न सह सकी,
पर रुद्राकंठा द्रोपदी कुछ भी न उनसे कह सकी।
बस अश्रु-पूर्ण विलोचनों से देखकर हरि को वहाँ,
निर्जीव-सी वह रह गई बैठी जहाँ की ही रहा तहाँ।।
मानो गिरा भी कह सकी पांडव न उसकी हार के,
वह दुखिनी चुप रह गई हरि को समझ निहार के।
पर अश्रु-जल अवरुद्ध उसकी दृष्टि ने मानो कहा-
अब और क्या इस दुखिनी को देखना बाकी रहा ?
यों जान कर सबको दुखी लाख, उत्तरा-उत्ताप को,
भूले रहे भगवान भी कुछ देर अपने आप को !
फिर रोक करुणा-वेग सबको शीघ्र समझाने लगे,
उस शोक सागर से उन्हें तट ओर ले जाने लगे।।

**37**"धीरज धरो कृष्ण ओहो ! भद्रा सुभद्रा ! शांत हो,
है गति यही तनु धारियों की शौक से मत भ्राँत हो।
यह कौन कह सकता कि अब अभिमन्यु जीवित है ही नहीं?
जग में सदा को कीर्ति करना, ही भला मरना कहीं?
जब तक प्रकाश समर्थ होगा अंधकार विनाश में,
जब तक उदित होते रहेंगे सूर्य-शशि आकाश में,
अभिमन्यु का विश्रृत रहेगा नाम तब तक सब कहीं,
नश्वर जगत में जन्म लेकर वीर मरते ही नहीं।
आजन्म तप करके कठिन मुनि भी न जा सकते वहाँ
संसार के बंधन कभी कोई न आ सकते जहाँ।
अक्षय्य सब सुख है जहाँ-दुख एक भी होता नहीं,
सच मानकर मेरे वचन अभिमन्यु को जानो वही।।
वह वीर नश्वर देह तज कर आप तो है ही जिया,
पर सत्य समझो है तुम्हें भी अमर उसने कर दिया।
ऐसे समर्थ सपूत का तुम शोक करती हो आहो!
उसकी सहज ही मृत्यु में गौरव कहाँ था कि यह कहो? "
कहकर वचन भगवान ने यों ज्ञान जब उनको दिया,
कुछ शांत जब हरी सात्वना से हो गया उनका हिया,
तब युग दृगों से दुख मय अविरल सलिल-धारा बहा,
पाकर तनिक अवलंब सा यज्ञसेनी ने कहा-
" धिक्कार है हे तात! ऐसी अमरता परलोक में,
जीना किसे स्वीकार है आजन्म रहकर शोक में?
पूरे हुए हैं क्या हमारे पूर्व पाप नहीं अभी ?
हां ! वह हमारा पुत्र प्यारा फिर मिलेगा क्या कभी ?



**38** अभिमन्यु को मृत देखकर भी हाय! मैं जीती रही,
हा! क्यों न मुझे हतभागिनी के अर्थ फट जाती मही!
दुख भोगने के ही लिए क्या जन्म है मेरा हुआ !
हा! कब रहा जीवन न मेरा शौक से घिरा हुआ?
मेरे हृदय के हर्ष हा! अभिमन्यु अब तू है कहाँ ?
दृग खोलकर बेटा, तनिक तो देख हम सबको यहाँ।
मामा खड़े हैं पास तेरे तू महीं पर है पड़ा !
निजा गुरुजनों से मान का तो ध्यान था तुझको बड़ा।।
व्याकुल तनिक भी देखकर तू देता था मुझे,
पर आज मेरे पुत्र प्यारे, हो गया है क्या तुझे?
धात्री सुभद्रा को समझकर माँ मुझे था मानता,
पर आज तू ऐसा हुआ मानो न था पहचानता।
हां! पाँच ग्रामों की बुरी वह संधि जब होने लगी,
सुनकर तथा उस बात को जब मैं बहुत रोने लगी।
क्या याद है? था पांडवों के सामने तो ने कहा-
स्वीकृत नहीं यह संधि मुझको माँ! न तू आँसू बहा।।
रहते हुए भी शस्त्रधारी पांडवों के साथ में
हां! तो अकेला हत हुआ, पड पापियों के हाथ में!
कोई ना कुछ भी कर सका ऐसा अनर्थ हुआ किया,
धिक् पांडवों की शूरत, धिक् शस्त्र क्षेत्र धारणा की क्रिया।।
कहती हुई यों द्रोपदी का कंठ गद्गद हो गया,
विष वेग के सम शोक से चैतन्य उसका खो गया।
हरि ने सजग कर तब उसे व्यंजनादि के उपचार से,
दी सांत्वना समयोपयोगी ज्ञान के विस्तार से-

**39** अभिमन्यु के दर्शन बिना तुमको न रोना चाहिए,
उसकी परम पद प्राप्ति सुनकर शांत होना चाहिए।
ले जन्म क्षणभंगुर-जगत में कौन मरता है नहीं ?
पर है उचित मरना जहाँ पर वीर मरते हैं वहीं।
अभिमन्यु के घातक सभी अति शीघ्र मारे जाएंगे,
तुम स्वस्थ हो, इस पाप का वे दंड पूरा पाएंगे।
करते अभी तक पार्थ थे जो युद्ध करुणाधीन हो,
बन जाएंगे अब रुद्र रण में, रोष में अति लीन हो।।
होगा जयद्रथ कल निहित, प्रण कर चुके अर्जुन अभी,
धीरज धरो अतएव मन में शांत होकर तुम सभी।
दो धैर्य मेरी ओर से, अब उत्तरा के चित्त को।।
सुत-रूप में वह पाएगी खोए हुए निजी वित्त को।
श्रीकृष्ण ने इस भांति सबको लीन करके ज्ञान में,
प्रस्तुत कराई शीघ्र ही चंदन-चिता सुस्थान में,
अभिमन्यु का मृत देह उस पर शांति से रक्खा गया,
ज्यों क्रूरता की गोद में करुण्य का भाजन नया ।।
होकर ज्वलित तत्क्षण चिता की ज्वाला में नभ को छुआ,
पर उस वियोग-विपत्ति विधुरा उत्तरा का क्या हुआ ?
उस दग्धहृदय को मरण भी हो गया दुर्लभ बड़ा,
वह गर्भिणी थी इसलिए निज तनु उससे रखना पड़ा !
अभिमन्यु का तन जल गया तत्काल ज्वाला जाल से,
पर कीर्ति नष्ट न हो सकी उस वीरवर की काल से।
अच्छा-बुरा बस नाम ही रहता है सदा इस लोक में,
वह धन्य है जिसके लिए हो लीन सज्जन शोक में ।।

**चतुर्थ सर्ग**

**40** इसके अनंतर कृष्ण ने सबको बहुत धीरज दिया,
फिर आर्त अर्जुन को वहाँ इस भांति उत्तेजित किया-
“अत्यंत रोषावेग से मैं तुमने किया है प्रण कड़ा,
अब यत्न क्या इसका सखे !यह कार्य है दुष्कर बड़ा’’।
यों सुन वचन गोविंद के निर्भय धनंजय ने कहा-
(वीरत्व करो ना शांति का त्रिस्त्रोत गंगाजल बहा।)
"निश्चय मरेगा कल जयद्रथ प्राप्त होगी जय मुझे,
हे देव !मेरे यत्न तुम हो, मत दिखाओ भय मुझे,
कहते हुए यो पार्थ के दो बूंद आंसू गिर पड़े:
मानो हुए दो सीपीयों से व्यक्त दो मोती बड़े।
फिर मौन होकर निज शिविर मेवे तुरंत चले गए,,
छलने चले थे भक्त को भगवान आप छले गये।।
हर शोक पांडव पक्ष का निज शिविर में हरी भी गए,
फिर शीघ्र ही भगवान ने प्रकटित किए कौतुक नए।
कर योग माया को सजग निद्रित जगत की व्याप्ति को।
झट ले चले वे पार्थ को शिव निकट अस्त्र प्राप्ति को।।
लख प्राकृतिक छवि मार्ग में गिर वन नदी नभ की नयी,
विस्मित हुए अत्यंत अर्जुन आत्मा विस्मृति हो गई।
उस काल उनका शोक भी चिंता सहित जाता रहा,
हो प्रेम से पुलकित उन्होंने यों रमापति से कहा-

41 महिमा तुम्हारी दिखती सब और ही अद्भुत हरे!
कौशल तुम्हारे हैं सभी अत्यंत अनुपमता भरे।
करती प्रकाशित नित्य नूतन छवि तुम्हारी है सृष्टि है ,
पढ़ती जहां अडती वही हटति नहीं फिर दृष्टि है।।
आकाश में चलते हुए यों छवि दिखाई दे रही,
मानो जगत को गोद लेकर मौद देती है मही।
उन्नत हिमाचल से धवल यह सुरसरि यो टूटती ,
मानो पयोधर से धरा के दुग्ध धारा छूटती।।
निद्रित दशा में सृष्टि सारी पा रही विश्राम है,
निस्तब्द निश्चल प्रकृति की शोभा परम अभिराम हैं ।
भूषण सदृश्य उड्गण हुए मुख-चंद्र शोभा छा रही,
विमलाम्बरा रजनी वधू अभिसारिका सी जा रही।।
खग वृंद सोता है अतः कल कल नहीं होता जहाँ,
बस मंद मारुति का गमन ही मौन है खोता वहाँ।
इस भांति धीरे से परस्पर कह सजगता की कथा,
यों दीखते हैं वृक्ष ये हो विश्व के प्रहरी यथा ।।
कर पार गिरी वन नद यद्यपि कैलाश को हम जा रहे ।
पर दृश्य आगे के स्वयं मानो निकट सब आ रहे।
गोविंद पीछे तो अहो देखो तनिक दृग फेर के,
तम कर रहा है लीन सा क्रम से जगत को घेर के ।।
मधु गंध मणिमय मन्दिरों से फैलति सुंदर जहाँ,
यह दिखती अलकापुरी उपमा अहो इसकी कहाँ?
गाते प्रियाओं के सहित रसराग यक्ष जहाँ-तहाँ,
प्रत्यक्ष सी उत्तर को दीखति लक्ष्मी जहाँ-



42 कहते हुए यों पार्थ पर सहसा उदासी छा गई ,
उत्तर दिशा से उत्तरा की याद उनको आ गई।
हा निज जनों का शोक सबको सपने में भी सपने में भी सालता,
मृत बंधुओं का ध्यान ही मन को विकल कर डालता ।।
बोले वचन भगवान तब उनसे प्रचुर प्रियता पगे-
हे वीर भारत ! व्यर्थ को फिर व्यग्र तुम होने लगे
अब तक तुम्हारा शोक क्या यह पूर्ववत अनिवार्य है?
दुर्बल बना कर मोह मद को नष्ट करता कार्य है।
श्री कृष्ण के सुनकर वचन कुछ उत्तर न अर्जुन ने दिया,
अतएव उनके स्कन्ध पर हरि ने करारोपण किया।
तब पड़ गए अवसन्न वे वैचित्रय की-सी दृष्टि में,
था वह नितांत नवीन जो कुछ दृश्य आया दृष्टि में।।
देखा उन्होंने तब की मानो वे बहुत ऊपर गए,
रवि- चंद्र लोको के मिले बहु दिव्य दृश्य नए-नए।
चलते हुए यो अंत में वैकुंठ दीख पडा उन्हें,
अवलोक उसकी छवि हुआ आश्चर्य हर्ष बड़ा उन्हें।
उज्जवल मनोरम थी वहाँ- की भूमि सारी स्वर्ण की,
थी जड़ रही जिसमें विपुल मणिया अनेकों वर्ण की।।
प्रत्येक पथ के पार्शव में फूले हुए बहु फूल थे,
उड़ते हुए जिनके रज:कण दिव्या शोभा मूल थे।।
जिनके सुधामय विमल जल कोमल- सुगंधी- सने हुए,
कुंडा दी सलीलाशय से रुचिर थे ठौर-ठौर बने हुए ,
जोड़ेंमिलिंदो के मुदित जिनसे मनोज्ञ मिले हुए।
नलिनी नलिन आदिक जलज थे एक साथ खिले हुए ।
जिन पर कहीं मणि की शिलाऐं तृण-वितान कहीं कहीं।
छोटे बड़े क्रीडादी थे शोभायमान कहीं-कहीं,

43 थे नाचते केकी कहीं थे हंस पुंज कहीं-कहीं।।
निर्झर कहीं थे झर रहे थे रम्य पुंज कहीं-कहीं
सब लोग अजरामर वहाँ के रूपवान विशेष थे,
बलवान शिष्ट-वरिष्ठ जिनके दृग सदा अनिमेय थे।
सब अंग सुगठित श्रेष्ठ सबके स्वर्ण वर्ण अशेष थे,
वर्णन किए जाते नहीं जैसे मनोहर वेष थे।।
हों देख कर लज्जित जिन्हें कश्मीर कुंकुम क्यारियाँ ,
थी ठौर-ठौर विहार करती सुंदरी सुर नारियॉं।
सबके मुखों पर छा रही थी हर्ष की दिव्य प्रभा,
मानो असंख्या सुधारकों की थी वहां शोभित सभा।।
सुरगण कहीं वीणा बजा कर हरि चरित थे गा रहे,
कोई कहीं थे आ रहे कोई कहीं थे जा रहे।
सर्वत्र किडाऐं रुचिर बहुत भांति की थी हो रही,
थी भद्र भावों की हुई पूरी पराकाष्ठा वही।
दुख शोक आधी व्याधि चिंताएं न कोई थी वहाँ,
आनंद उत्सव प्रेम के ही साज थे देखो जहाँ
मद मोह राग-द्वेष के थे चिन्ह भी मिलते नहीं
सर्वत्र शांति पवित्रता थी पाप ताप न थे कहीं।।
इस जन्म में वैकुंठ था देखा ना अर्जुन ने कभी,
प्रछन्न भित्त कपाट आदिक रत्न विचरित थे सभी।
बहू वर्ण किरणों का रुचिर आलोक अति उद्दंड था,
देखा हुआ मार्तंड मानो एक उसका खंड था
जाति जहाँ दृष्टि थी मिलता ना उसका छोर था
मंदार कल्पादीक दृमों का दृश्य चारों और था।



44 अद्भुत अनेकों रंग के स्वच्छंद खग थे गा रहे,
शीतल सुगंध समीर के थे मंद झोंके आ रहे।
फिर आप से ही आप वे हरीधाम मे खिंच से गये।
देखा वहॉं का दृश्य जब युग नेत्र मिच-से गये।
सिंहासनस्थ रमा सहित शोभित वहां भगवान थे।
घन दामिनी जिनके उभय छाया प्रकाश समान थे।
थी चंचला अचला जहां सर्वेश शोभित थे वहाँ,
वैभव वहां का सा भला त्रैलोक्य में होगा कहाँ?
अवलोक आभूषण छटा होती अनल की भ्रांति थी,
करती अति क्रम किंतु उनको दिव्या उनकी क्रांति थी।।
सानंद सिंहासन निकट थी सिद्धियां सारी खड़ी,
थी व्यक्त रति मति घृति क्षमादिक शांति युत प्यारी बड़ी।
शिवा विधि सूरप रवि शशि यमादिक भक्ति से भर रहे,
करते हुए मुस्कान हरि सब पर कृपा थे कर रहे।
इसके अनंतर पार्थ ने परिपूर्ण प्रेम उमंग में,
आता हुआ अभिमन्यु देखा जय विजय के संग में।
अवलोक उसको सुध उन्हें कुछ भी रही न शरीर की,
शोभा सहस्र गुनि प्रथम से थी अधिक उस वीर की।।
कर जोड़ कर अभिमन्यु ने प्रभु को प्रणाम किया वहाँ,
फिर सब सुरों को सिर झुकाकर स्वस्तिवाद लिया वहॉं
सब देव उसके कर्म का सम्मान अति करने लगे,
उस काल मानो पार्थ सुख के सिंधु में तरने लगे,
था जो अशेष अभिष्ट दायक नित्य रहता था खिला;
वात्सल्य युत अभिमन्यु को वाह पद्म-पद्मा से मिला।

45 तब दिव्य दर्शनों से प्रभा की वृष्टि सी करते हुए,
बोले स्वयं भगवान यों सबके हृदय हरते हुए-
" संतुष्ट तूने हैं किया निज धर्म पालन से मुझे,
सौभद्र! निज सामिप्य मै देता सदा को हूं तुझे।
पर और भी कुछ मांग तू वर वृत्त तेरा गेय है;
अपने जनो के अर्थ मुझको कौन वस्तु अदेय है?
अति मुग्ध होकर पार्थ ने जब मूँद आंखों को लिया,
पर खोलने पर फिर न वैसा दृश्य दिखलाई दिया,
सुस्मित वदन श्री कृष्ण को ही सामने देखा खड़ा,
चित्रस्थ-से वे रह गए करते हुए विस्मय बडा।।
थी जिस समय उस दृश्य से सुध-बुध न अर्जुन को रही,
राजा युधिष्ठिर आदि ने भी स्वप्न में देखा वही,
उस लोक नाटक सूत्रधार का ठाठ अति-अभी राम हैं,
वह एक होकर भी सदा करता अनेकों काम हैं।
तत्काल अर्जुन से वचन कहने लगे भगवान यों-
" हे वीर! तुम निश्चेष्ट से क्या कर रहे ध्यान यों?
अब भी तुम्हारा दुखदाई मोह क्या छूटा नहीं ?
अब भी प्रबल परतंत्रता का जाल क्या टूटा नहीं?
अभिमन्यु विषयक शोक जो अब भी तुम्हें हो तो कहो,
गुरु पुत्र सम लादू उसे मैं स्वस्थ जिसमें तुम रहो।
पर याद रखो बात यह रहता न तनु स्थाई कहीं,
बंधन विनश्वर विश्व का है सत्य सुखदाई नहीं।।
सच्चे अभीष्ट स्थान का बस मार्ग ही संसार है,
साकल्य पूर्वक कर चुका अभिमन्यु उसको पार हैं।



46 क्या शोक करना चाहिए उसके लिए मन में तुम्हें ?
वह पुण्य पद क्या दिखता है विश्व बंधन में तुम्हें?
जो धर्म पालन से विमुख जिसको विषय ही भोग्य है,
संसार में मरना उसी का सोचने के योग्य है।।
जो इंद्रियों को जीत कर धर्मा चरण में लीन है
उसके मरण का सोचने का क्या वह मुक्त बंधन हीन है।
संसार में सब प्राणियों का देह तक संबंध है,
पड़ मोह बंधन में मनुज बनता स्वयं ही अंध हैं,
तनु धारियों का बस यहां पर चार दिन का मेल है,
इस मेल के ही मोह से जाता बिगड़ सब खेल हैं।
संपूर्ण दुखो का जगत में जगत में मोह ही बस मूल है,
भावी विषय पर व्यर्थ मन में शोक करना भूल है।
निज ईष्ट साधन के लिए संसार धारा में बहे,
पर नीर से नीरज सदृश्य इससे आलिप्त बनारहे।
उत्पत्ति होती है जहां पर नाश् भी होता वहाँ,
होता विकास जहां सखे हैं ह्रास होता वहाँ।
होता जहां पर सौख्य हैं दुख भी वहां अनिवार्य है,
कृति प्रकृति अविराम अपना नियम पूर्वक कार्य है,
सुख-दुख विचार विहीन तुमको कर्म का अधिकार है,
संसार में रहना नहीं पाना अचल उद्धार है।
माना तुमने एक भी एक भी सौ-सौ तरह हमने कहा,
अब भी तुम्हारा चित्त् क्या व्याकुल विमोहित हो रहा?''
गदृगदृ हृदय से पार्थ तब बोले वचन श्रद्धा भरे,
लीला तुम्हारी है विलक्षण हे अखिल लोचन हरे!
इस आपदा से त्राण मेरा कौन करता तुम बिना?
प्रत्यक्ष दिखला कर सभी दुख कौन हरता तुम बिना?

47 जो कुछ दिखाया आज तुमने वह ना भूलेगा कभी ,
क्या दृष्टि में फिर और ऐसा दृश्य झूलेगा कभी?
कहते हुए यों पार्थ फिर हरि के पदों में गिर गए,
प्रभु ने किए तब प्रकट उन पर प्रेम भाव नए नए।।
इसके अनंतर पार्थ युत कैलाश पर हरि आ गए,
मानो सुयश के पुंज पर युग कंज छवि से छा गए!
थी यों शिवा सेवित वहाँ ध्यानस्थ शंकर की छटा:
मानो सुधांशु कला निकट निश्चल शरद की सित घटा।।
अर्जुन समेत रमेश ने गौरीश का वंदन किया,
उठ शंभू ने उसका बहुत सानंद अभिनंदन किया,
आशीष देकर पार्थ को वंदन किया भगवान का,
रखते खड़े जन ध्यान है सबके उचित सम्मान का।।
कर पुण्य दर्शन भक्ता युक्त भगवान का निज गेह में।
कृत कृत्यता मानी गिरीश ने मग्न हो सुस्नेह में1
फिर नम्रता पूर्वक कहा किस हेतु इतना श्रम किया''
हरिहंस गए हंस आप हर ने अस्त्र अर्जुन को दिया।
वह अस्त्र पाकर पार्थ के औदास्य का उपशम हुआ,
अति तेज उनका वज्रधारी इंद्र के ही सम हुआ।
समझा मरा-हीसा उन्होंने शत्रु वर अपना वही,
प्रभु का प्रसाद विशेष करता कृतार्थ किसे नहीं?
होने लगे फिर हरि विदा सानंद जब श्रीकंठ से-
कर प्रार्थना तब पार्थ बोले प्रेम गदगद कंठ से-
हे भक्तवत्सल ईशा तुम को बार-बार प्रणाम है,
सर्वेश मंगल कीजियो शंकर तुम्हारा नाम है।''
रख हाथ सिर पर शम्भु ने जय दान अर्जुन को दिया,
प्रस्थान अपने स्थान को हरि युत उन्होंने तब किया।

48 पहुंचे शिविर में जिस समय वे हो रही थी गत निशा,
कुछ देर में दर्शित हुई द्युति दृश्य से प्राची दिशा।
नूतन पवन के मिस प्रकृति ने सॉस ली जी खोल के,
गाने लगी श्यामा सुरीले कंठ से रस घोल के।
क्या लोक निद्रा भंग कर यह वाक्य कुक्कुट ने कहा-
जागो उठो देखो कि नभ मुक्तावली बरसा रहा।
तमचर उलूकादिक छिपे जो गर्जते थे रात में,
पाकर अंधेरा ही अधम जन घूमते है घात में।
सूखे कुसुम सम झड़ गए तारा गणों के गुच्छ क्या?
निज सत्व रख सकते भला पर राज्य में है तुच्छ क्या?
जब तक हुआ आकाश मे दिनकर ना आप प्रकाश था,
उसके प्रथम ही हो गया संपूर्ण तम का नाश् था।
सब कार्य कर देता बड़ों का पुण्य पूर्ण प्रताप ही,
तेजस्वीयों के विघ्न सारे दूर होते आप ही।।
विधि युक्त सूतों ने वहाँ आकर जगाया तब उन्हें,
बातें विमोहित कर रही थी स्वप्न कि वे सब उन्हें,
वे शीघ्र शैय्या से उठे गुणगान कर भगवान के ,
कर नित्य कृत्य समाप्त फिर पहुंचे सभा में आन के।।
संपूर्ण स्वजनों के सहित देखा युधिष्ठिर को वहाँ,
विरदावली वंदी जनादिक गांन करते थे जहाँ।
सुरगुरु सहित होती सुशोभित जो सुरेश्वर की सभा,
हरि युत युधिष्ठिर की सभा त्यों पा रही थी सुप्रभा ।।
सब से मिले अर्जुन वहां सानंद समुचित रीति से,
पूछी कुशल रख हाथ सिर पर धर्मसुत ने प्रीति से।
वर्णन धनंजय ने किया सब हाल उनसे रात का, ।।
आदेश मांगा अंत में रण में विपक्ष विघात का

49 वृतांत उनकाश्रवण कर श्रीकृष्ण ओर निहार के,
पुलकित युधिष्ठिर हो गए सुध बुध समस्त विसार के।
प्रेमाश्रृ दीर्घ विलोचनों से निकलकर बहने लगे-
फिर भक्ति-विहव्ल कण्ठ से वे यों वचन कहने लगे।
कब क्या करोगे तुम जनार्दन जानते हो सो तुम ही,
हैं ठाठ ये कितने जगत के ठानते हो सो तुम ही।
केशव तुम्हारे कार्य सारे सब प्रकार विचित्र है,
सब नेति नेति पुकार कर गाते पवित्र चरित्र है।।
जैसे सुरों का वज्रधारी शक्र का आधार है,
हे चक्रपाणि हमारा सब तुम्हीं पर भार है।।
संसार में सब विधि हमारे सर्व साधन हो तुम्हीं,
तन हो तुम्ही मन हो तुम्ही धन हो तुम्ही जन हो तुम्ही,
मैं बहुत कहना चाहता हूं पर कहां जाता नहीं।।
आश्चर्य है चुपचाप भी मुझसे रहा जाता नहीं।
भगवान भक्तों की भयंकर भूरी भीति भगाईयो,
इस विपद पारावार से प्रभु शीघ्र पार लगाइयो।।
अर्जुन अनुज को सौंपता हूँ मैं तुम्हारे हाथ में,
जो योग्य समझो कि जियो प्रभुवर हमारे साथ में।
बस अंत में विनती यही है छोड़कर बातें सभी,
हे हम तुम्हारे ही सदा मत भूलियो हमको कभी।।
यो कहा युधिष्ठिर ने वचन जन मौन धारण कर लिया,
निश्चिंत कर भगवान ने तब अभय दान उन्हें दिया।
तत्काल ही फिर युद्ध के बाजे वहाँ बजने लगे,
सोत्साह जय जय कार कर सब शूरगण सजने लगे,
तब भीम सात्यकि आदि को रक्षक युधिष्ठिर का बना,
गांडीवधारी पार्थ ने समझी सफल निज कामना।।



50 कर वंदना श्रीकृष्ण की वे शीघ्र ही रथ पर चढ़े,
बलवान वृतासूर निधन को मेघवाहन सम बड़े।।
करते हुए गर्जन गगन में दौड़ते है घन यथा,
हयगज रथादिक शब्द करते चल पड़े अगणित तथा।
उड़ने लगी सब ओर रज होने लगी कंपित धरा।
मानो न सहकर भार वह ऊपर चली करके त्वरा।
पीछे युधिष्ठिर को किए आगे चले अर्जुन बली,
नचने लगे फण शेष के मचने लगी अति खलबली ।
अन्यत्र अनुगामी बड़ों के सुमन होते सर्वदा,
पर आपदा में दीखते हैं अग्रगामी ही सदा।।

**जयद्रथ-वध पंचम सर्ग**

**51**था विकट शकटव्यूह सम्मुख द्रोण का कोसों अड़ा,
घन कण्टकितवन–तुल्य जिसका भेदना दुष्कर बड़ा।
पीछे जयद्रथ को छिपा, छै नायकों के साथ में,
आचार्य ही थे द्वार-रक्षक शस्त्र लेकर हाथ में।।
अवलोक सम्मुख पार्थ ने गुरू को प्रणाम किया महा,
आशीष दे आचार्य्य ने उनसे प्लुत-स्वर में कहा –
"देकर परीक्षा आज अर्जुन ! तुष्ट तुम मुझको करो,
आओ, दिखाओ हस्त-कौशल यह समर-सागर तरो।"
सुत-घातकों को देखते ही पार्थ मानो जल उठे,
मुख मार्ग से क्या त्वेष ही तो वे वहाँ न उगल उठे।।
"आचार्य ! मेरा हस्त-कौशल देख लेना फिर कभी,
अभिमन्यु का बदला तुम्हें लेकर दिखाना है अभी।"
इस भाँति बातों में समर का 'श्रीगणेश' हुआ जहाँ,
होने लगा तत्काल ही अति–तुमुल-कोलाहल वहाँ।
ज्यों नीर बरसाते जलद करते हुए गुरू-गर्जना,
लड़ने लगे दोनों प्रबल-दल कर परस्पर तर्जना।।
उस ओर द्रोणाचार्य थे, इस ओर अर्जुन वीर थे,
गुरू-शिष्य दोनों छोड़ते तीखे हजारों तीर थे।
हैं घोर वाद-विवाद करते दो प्रबल पण्डित यथा,
करने लगे दोनों परस्पर शस्त्र वे खण्डित तथा।।
दोनों रथी इस शीघ्रता से थे शरों को छोड़ते,
जाना न जाता था कि वे कब थे धनुष पर जोड़ते।

52 थे बाण दोनों के गगन में इस तरह फहरा रहे –
ज्यों उर्मिमाली में अनेकों उरग-वर लहरा रहे।।
करने लगे दोनों दलों को दलित यों दोनों बली,
कुछ देर ही में रक्त की धारा धरा पर बह चली।
लड़ने लगे सब शूर सैनिक, भीति से कायर भगे;
सानन्द गृद्ध श्रृंगाल आदिक घूमने रण में लगे।।
आगे न अर्जुन बढ़ सके आचार्य-बल "वातूल"[1] से,
"कल्लोल"[2] लोल-पयोधि के ज्यों बढ़ न सकते कूल से।
बोले वचन तब पार्थ से हरि-"व्यर्थ यह संग्राम है –
है काल थोड़ा और करना बहुत भारी काम है।"
यों कह वचन श्रीकृष्ण ने रथ अन्य ओर बढ़ा दिया,
चेष्टा बहुत की द्रोण ने, पर क्या हुआ उनका किया?
प्रबल–प्रभज्जन वेग-गति रोकी न जा सकती कहीं,
करने लगे वे विवश होकर व्यूह की रक्षा वहीं।।
रथ देख बढ़ता पार्थ का सम्पूर्ण शत्रु दुखी हुए,
सब शुर पाण्डव-पक्ष के कर हर्षनाद सुखी हुए।
लड़ने युधिष्ठिर से लगे तब द्रोण बढ़कर सामने
संग्राम जैसे था किया गांगेय से "भृगुराम"[3] ने।

---

[1] आँधी, बवडर

[2] तरङ्ग

[3] भीष्म ने अपने भाई विचित्रवीर्य के विवाह के लिए काशीराज की तीन कन्याओं का बलपूर्वक हरण किया था। उनमें से अम्बा नामक कन्या पहले ही शाल्वराज को वरने का प्रण कर चुकी थी, इससे उन्होंने उसे छोड़ दिया। परन्तु फिर शाल्वराज ने उसके साथ विवाह करना स्वीकार नहीं किया, तब वह भीष्म से बदला लेने की इच्छा से परशुराम की शरण में गई। उसी के सबंध में गुरू और शिष्य अर्थात् परशुराम और भीष्म में भंयकर युद्ध हुआ था।

**53** जिस ओर सेना थी गजों की पर्वतों के सम अड़ी,
उस ओर ही रथ ले गये हरि शीघ्रता करके बड़ी।
तब पार्थ-बाणों से मतगंज यों पतन पाने लगे –
घन रवि-करों से बिद्ध मानो भूमि पर आने लगे।
जाज्वल्य ज्वालामय अनघ की फैलती जो कान्ति है,
कर याद अर्जुन की छटा होती उसी की भ्रान्ति है,
इस युद्ध में जैसा पराक्रम पार्थ का देखा गया,
इतिहास के आलोक में है सर्वथा ही वह नया ।।
करता पयोदों को प्रभंजन शीघ्र अस्तव्यस्त ज्यों,
करने लगे तब ध्वस्त अर्जुन शत्रु-सैन्य समस्त त्यों,
वे रिपु-शरों को काटकर रणभूमि यों भरने लगे -
रण चण्डिका पूजन सरोजों से यथा करने लगे ।।
ज्यों ज्यों शरों से शुत्रुओं को थे धनंजय मारते,
श्रीकृष्ण थे रथ को बढ़ाते कुशलता विस्तारते।
उस काल रथ के हय तथा गाण्डिव के शर जगमगे,
करते हुए स्पर्धा परस्पर साथ ही चलने लगे।
शर-रूप खर-"रसना"[4] पसारे रिपु रूधिर पीती हुई,
उत्कृष्ट भीषण शब्द करती जान मन चीती हुई,
अर्जुन "कराप्रोत्साहिता"[5] प्रत्यक्ष "कृत्या"[6] मूर्ति-सी,
करने लगी गाण्डिव "मौर्वी"[7] प्रलयकाण्ड स्फुर्ति – सी,
खरवाण–धारा-रूप जिसकी प्रज्वलित ज्वाला हुई,
जो वैरियों के व्यूह को अत्यन्त विकराला हुई।
श्रीकृष्ण-रूपी वायु से प्रेरित "धनज्जय"[8] ने वहाँ,
कौरव "चभू"[9] वन कर दिया तत्काल नष्ट जहाँ तहाँ।

4 जीभ
5 अर्जुन के हाथ के अग्रभाग से उत्साहित की हुई।
6 संहारकारिणी शक्ति
7 अर्जुन के धनुष की टोरी
8 अर्जुन हाथ में अग्नि



54 टूटे हुए रथ थे कहीं, थे मृत "गजाश्व"[10] अड़े कहीं,
थे रूण्ड-मुण्ड करादि रण में छिन्न-भिन्न पड़े कहीं।
इस भाँति अस्तव्यस्त फैले दिखते थे वे सभी –
मानो हुई नभ रूधिरमय वृष्टि यह अद्भुत अभी
गति रोकने को पार्थ की जो वीर रण करते गये,
क्षणमात्र में उनके शरों से वे सभी मरते गये।
जाने उन्होंने शत्रुगण कितने वहाँ मारे नहीं,
जाते किसी से हैं गिने आकाश के तारे कहीं?
इस भाँति अपने बैरियों को युद्ध में संहारते,
बढ़ने लगे आगे धनंजय वीरता विस्तारते।
पर देख दिन को गमन करके वे बहुत क्षोभित हुए,
अत एव दिनकर-तुल्य ही चलते हुए शोभित हुए।
मारी श्रुतायुध ने गदा श्रीकृष्ण को उस काल में,
पर वह उचट कर जा लगी उलटी उसी के "भाल"[11] में
सिर फट गया उसका वहीं, मानों अरूण रंग का घड़ा;
हाँ, विधि-विरूद्धाचार से किसको नहीं मरना पड़ा?
अत्यन्त दुर्गम भूमि में अविराम चलने से थके,
होकर तृषित रत-अश्व उनके जब न सत्वर चल सके,
वरूणास्त्र-द्वारा पार्थ ने क्षिति से निकाला जल वहीं,
भगवान की जिस पर कृपा हो, कुछ कठिन उसको नहीं।

9 फौज
10 हाथी, घोडे
11 अम्बष्ट देश के राजा श्रुतायुध की वह गदा जो उन्होने श्रीकृष्ण को मारी थी, अमोघ थी। पर साथ ही यह वर भी था कि यदि युद्ध न करने वाले पुरूष पर छोड़ी जायगी तो पलट कर मारनेवाले को ही मार डालेगी। श्रीकृष्ण युद्ध नहीं करते थे, पर क्रोध में आकर श्रुतायुध ने उन पर उसका प्रहार कर दिया। अत एव, फल उलटा हुआ –स्वयं श्रुतायुध ही मारे गये। श्रुतायुध पूर्व जन्म के एक दैत्य माने जाते हैं।

**55** रचते हुए सर-सा वहाँ निज त्राण भी करते हुए ;
त्यों युद्ध कर निज शत्रुओं के प्राण भी हरते हुए;
उत्पत्ति-पालन-प्रलय के-से कृत्य अर्जुन ने किये,
विधि-विष्णु-हर के-से अकेले दिव्यबल दिखला दिये।
हय-गज-रथदिक थे जहाँ पाषाणखण्ड बड़े-बड़े,
सिर-कच,चरण-कर आदि ही जल-जीव जिसमें थे पड़े
ऐसे रूधिर-नद में वहाँ रथ-रूप नौका पर चढ़े,
श्रीकृष्ण-नाविक युक्त अर्जुन पार पाने को बढ़े ॥
यों देख बढ़ते पार्थ को कुरूराज अति विह्ल हुआ,
चेष्टा बहुत की रोकने की पर न कुछ भी फल हुआ।
तब वह निरा निस्तेज होकर घोर चिन्ता से घिरा,
जाकर निकट यों द्रोण के कहने लगा कर्कश गिरा-
"आचार्य ! देखो, आपके रहते हुए भी आज यों,
दल नष्ट करता पार्थ है मृग-झुण्ड को मृगराज ज्यों।
हैं शूर मेरे पक्ष के यों कह रहे मुझसे सभी-
'जो चाहते आचार्य तो अर्जुन न बढ़ सकते कभी'॥
निज शक्ति भर मैं आपकी सेवा सदा करता रहा,
त्रुटि हो न कोई भी कभी, इस बात से डरता रहा।
सम्मान्य ! मैंने आपको अपराध ऐसा क्या किया –
जो सामने से आपने उसको निकल जाने दिया?
पहले वचन देकर समय पर पालते हैं जो नहीं,
वे हैं प्रतिज्ञा-घातकारी निन्दनीय सबी कहीं।
मैं जानता जो पाण्डवों पर प्रिति ऐसी आपकी,
आती नहीं तो यह कभी वेला विकट सन्ताप की ॥
निज सेवकों के अर्थ मन में सोच कर धर्मार्थ को,
घुसने न देते व्यूह में जो आज आप मध्यम-पार्थ को,



56 होती सहज ही में सफल तो आज मेरी कामना,
है कौन ऐसा, आपका रण में करे जो सामना ?
जो हो चुका सो हो चुका, अब सोच करना व्यर्थ है,
गत-काल के लौटालने को कौन शूर समर्थ है ?
है किन्तु अब भी समय यदि कुछ आपको स्वीकार हो,
भय-पूर्ण-पारावार भी पुरूषार्थ हो तो पार हो ॥
पुर्वानुकम्पा का मुझे परिचय पुन: देते हुए,
अन्त:करण से कौरवों की तरणि को खेते हुए,
अब भी जयद्रथ को बचाकर अनुचरों का दुख हरो,
गुरूदेव ! जाता है समय, रक्षा करो, रक्षा करो ॥ "
इस भाँति निज निन्दा श्रवण कर प्रार्थना के "व्याज"[12] से;
हो क्षुब्ध द्रोणाचार्य तब कहने लगे कुरूराज से –
"है यह तुम्हारे योग्य ही जैसी गिरा तुमने कहीं,
तुम जो कहो, या जो करो, है सर्वदा थोडा वही ॥
जो लोग अनुचित काम कर जय चाहते परिणाम में,
है योग्य उनकी-सी तुम्हारी यह दशा संग्राम में।
वीष-बीज बोने से कभी जग में सुफल फलता नहीं,
विश्वेश की विधि पर किसी का वश कभी चलता नहीं ॥
यह रण उपस्थित कर स्वयं अब दोष देते हो मुझे,
कह जानते हैं बस कुटिल जन वचन ही विष के बूझे,
दुष्कर्म तो दुर्बुद्धि-जन हठ-युक्त करते आप है,
पर दोष देते और को होते प्रकट जब पाप हैं।
सब काल निस्सन्देह मेरी पाण्डवों पर प्रिति है,
पर इस विषय में व्यर्थ ही होती तुम्हें यह भीति है।

---

[12] मिस

**57** मैं पाण्डवों को प्यार कर लड़ता तुम्हारी ओर से,
विचलित मुझे क्या जानते हो आत्म-धर्म्म कठोर से?
प्रेमादि जितने भाव हैं, वे देह के न विकार हैं,
सब मानवों के चित्त ही उनके पवित्रगार हैं।
अतएव यद्दपि चित्त में हैं पाण्डवों ने घर किये;
पर देह के व्यापार सारे हैं तुम्हारे ही लिये ।।
गुण पर न रीझे वह मनुज है, तो भला पशु कौन है?
निज शत्रु के गुणगान में भी योग्य किसको मौन है !
तुमने सजा यों पाण्डवों से शत्रुता का साज है,
पर क्या न उनके शील पर आती तुम्हें कुछ लाज है ?
मैंने तुम्हारे हित स्वयं ही क्या उठा रक्खा कहो !
अभिमन्यु के वध के सदृश मुझसे हुआ है अघ अहो !
जब तक न प्रायश्चित उसका मृत्यु से हो जायेगा ,
तब तक कभी क्या चित्त मेरा शान्ति कुछ भी पायेगा ।।
तुम पुत्र-सम प्यारे मुझे हो, फिर तुम्हीं सोचो भला;
क्या मैं तुम्हारे हित समर की शोष रक्खूँगा कला?
है बात यह, मुझसे विमुख हो पार्थ अपना रथ हटा,
दक्षिण तरफ से व्यूह में पहुँचा जहाँ थी गज घटा ।।
रूकता वहाँ किससे कहो, वह अद्वितीय महारथी ?
तिस पर उसे है मिल गया श्रीकृष्ण-जैसा सारथी !
पर त्याग कर तुम व्यग्रता, धीरज तनिक धारण करो,
कर्णदिकों के साथ उसका यत्न से वाराण करो।।
मेरा यहीं रहना उचित है व्यूह-रक्षा के लिए,
तिस पर युद्धिष्टिर पर विजय की मैं प्रतिज्ञा हूँ किए।
तुम कौन कम हो पार्थ से, उत्साह को छोड़ो नहीं।
होता जहाँ उत्साह है होती सफलता भी वहीं ।।
यद्दपि नहीं होते सभी के एक-से पुरूषार्थ हैं,
तुम भी उसी कुल में हुए, जिसमें हुए ये पार्थ हैं।

**58** यह खेल पाँसो का नहीं है प्राण का "पण"[13] आज है;
जो आज जीतेगा उसीका जीतन कुरूराज है ।।
जिसको पहन कर इन्द्र ने वृतासुरायुध सह लिये,
जिसके लिये मैंने बहुत-से व्रत तता तप हैं किये,
है वज्र की भी चोट जिससे सहज जा सकती सही,
आओ, तुम्हें मैं दिव्य अपना कवच पहना दूँ वहीं ।।"
आचार्य ने तब वह कवच कुरूराज को पहना दिया,
उस काल सचमुच शक्र-सा ही तेज उसने पा लिया।
कर वन्दना गुरू की मुदित वह पार्थ से लड़ने चला,
विख्यात विन्ध्याचल यथा आकाश से अड़ने चला .
चिन्तित युधिष्ठर भी हुए इस ओर अर्जुन के लिए,
निज भाव सात्याकि पर उन्होने शीघ्र यों प्रकटित किए-
"हे वीर! अर्जुन का न अब तक वृत कुछ विश्रुत हुआ ,
जगदिश जाने, क्यों हमारा चित्त चिन्ता-युत हुआ।.
हा ! वह कपिध्वज की ध्वजा भी दृष्टि में आती नहीं,
उनकी रथ-ध्वनि भी यहाँ अब है सुनी जाती नहीं।
जब से हुए हैं ओट वे अब तक न दिख पड़े मुझे,
हे देव ! बतला तो सही, स्वीकार है अब क्या तुझे?
हैं व्यग्र सुनने को श्रवण पर श्रव्य सुन पाते नहीं,
दृग दीन हैं पर दृश्य फिर भी दृष्टि में आते नहीं।
है चाहती खिलना तदपि मन की कला खिलता नहीं,
मैं शान्ति पाना चाहता हूँ पर मुझे मिलती नहीं ।।
होंगे न जाने किस दशा में हरि तथा अर्जुन कहाँ?
हा ! आज पल पल में विकलता बढ़ रही मेरी यहाँ।
कुछ बात ऐसी है कि जिससे चित्त चन्चल हो रहा,
विश्वास है, पर त्रास मेरे धैर्य को है खो रहा ।।

---

13 (बाजी)

**59**हे सात्यके ! अब शीघ्र मुझको शान्ति देने के लिये,
जाओ मुकुन्दार्जुन-निकट संवाद लेने के लिए।
कुछ भी विलम्ब करो न अब, करता विनय मैं क्लेश से,
अनुचित लगे यदि विनय तो जाओ अभी आदेश से ।।
इस कार्य-साधन के लिए मैंने तुम्हीं को है चुना,
हो अनुभवी तुम वीर, तुमने बहुत कुछ देखा–सुना।
सप्रेम अर्जुन ने तुम्हें दी युद्ध की शिक्षा सभी,
अतएव अनुगामी बनो तुम आप निज गुरू के अभी।
चिन्ता करो मेरी न तुम, रक्षक त्रिलोकीनाथ हैं,
सहदेव, धृष्टधुम्न आदिक शूर अगणित साथ हैं।
अवसर नहीं है देर का, अब शीघ्र-तुम तैयार हो;
आशीष देता हूँ – तुम्हारा पथ सहज में पार हो ।।"
यों सुन युधिष्टिर के वचन सप्रेम सात्यिक ने कहा –
"है मान्य मुझको आर्य का आदेश जो कुछ हो रहा।
पर कृष्ण-सहचर के लिए कुछ सोच करना है वृथा,
हरि के कृपा भाजन–जनों के कुशल की है क्या कथा!
त्रैलोक्य में ऐसा बली आता नहीं है दृष्टि में।
जीवित खड़ा जो रह सके गाण्डिव की शर-वृष्टि में।
कैसे टलेगा पार्थ का प्रण जो नहीं अब तक टला,
जो बात होने की नहीं किस भाँति वह होगी भला?
आदेश पाकर आपका जाता अभी मैं हूँ वहाँ,
पर आप द्रोणाचार्य से अति सजग रहियेगा यहाँ।
हो क्षुब्ध मर्यादारहित-जलनिधि-सदृश वे हो रहे,
उनके सुबल-कल्लोल में सब आज फिरते हैं बहे ।।"



**60**कह कर वचन यों "वृष्णिनन्दन"[14] सात्यकी प्रस्तुत हुआ,
इस कार्य में उसका पराक्रम पार्थ-सा ही श्रुत हुआ।
वह शत्रुओं को मारता सम्मुख पहुँच आचार्य के,
लड़ने लगा कौशन प्रकट कर विविध विध रण-कार्य के।
पड़ मार्ग में ज्यों रोक लेता शैल जल की धार को,
त्यों देख रूकता द्रोण से अपनी प्रगति के द्वार को।
झट सात्यकी भी पार्थ की ही रिति से हँसकर चला,
जो कार्य गुरू ने है किया वह शिष्य क्यों न करे भला।
होकर प्रविष्ठ व्यूह में तब पार्थ की ही नीति से,
सात्यकि गमन करने लगा, कर युध्द अद्मभत रीति से।
दावाग्नि से मचती विपिन में ज्यो भयंकर खलबली,
करने लगा निज वैरियों को व्यस्त त्यों ही वह बली ।।
सात्यकि गया, पर, स्वस्थ तो भी धर्मराज हुए नहीं,
भेजा उन्होंने भीम को भी अर्जुन की सुघ को वहीं।
रखते न अपनी आप तनी चिन्त में चिन्ता कभी,
निज प्रियजनों का ध्यान जितना श्रेष्ठ जन रखते सभी।
अर्जुन तथा सात्यकि-गमन से द्रोण थे क्षोभित बड़े,
अतएव पहुँचे भीम जब बोले वचन वे यों कड़े –
"अर्जुन-सदृश्य क्या भीम ! तू भी व्यूह मे घुसने चला?
क्या छल तुझे भी प्रिय हुआ जब से शकुनि ने है छला!
सुन कर वचन आचार्य के हँस भीम ने उत्तर दिया –
"गुरू से धनंजय ने न लड़कर, तात ! क्या छल है किया?
छल-छद्म करने में सदा हम सब निरे अनभिज्ञ हैं,
इस काम में तो बस हमारे बन्धु ही वर विज्ञ हैं !

---

[14] यदु वंशज थे सात्यकि भी यदुवंशी थी और अर्जुन का शिष्य एवं कृष्ण का परम भक्त था।

**61**हाँ, कार्य अर्जुन का यही समुचित न जा सकता गिना,
रिपु मारने जो वे गये गुरूदक्षिणा सौंपे विना।
हे आर्य ! वह ऋण व्याज-युत अब मैं चुकाता आपको,
तैयार होकर लिजिये, तजिए, हृदय के ताप को ।।"
कहकर वचन यों भीम उन पर वाण बरसने लगे,
अदुभुत अपूर्व, असीम अपनी शक्ति दरसाने लगे।
पर काट कर सब बाण उनके, तोड़कर रथ भी अहा !
"गुरू-ऋण अभी न चुका वृकोदर!" द्रोण ने हँसकर कहा।
घायल हुआ मृगराज ज्यों हत बुद्धि होता क्रोध से,
क्रोधित हुए त्यों भीम भी आचार्य के इस बोध से।
करते हुए त्यों ओष्ठ-दंशन अरूण हो अपमान से,
शोभित हुए वे दौड़ते निज बन्धु-वर हनुमान से ।।
ज्यों द्रोणगिरी बज्रांग ने था हाथ पर धारण किया,
त्यो द्रोण-रथ को झट उन्होंने एक साथ उठा लिया।
कन्दुक-सदृश्य फिर दूर नभ में शीघ्र फेंक दिया उसे ,
कर सिंहनाद सवेग तब वे व्यूह के भीतर घुसे ।।
होने लगी अति घोर ध्वनि सब ओर हाहाकार की,
आशा रही न, किसी किसी को द्रोण के उद्धार की।
पर बीच ही में कुद रथ से वृद्ध गुरू आगे बढ़े,
फिर युद्ध करने के लिए वे दूसरे रथ पर चढ़े।
रथ-युक्त फिर भी भीम ने फेंका उन्हें अति रोष से,
पूरित किया फिर व्योम को घन-तुल्य अपने घोष से।
कर युद्ध बारंबार यों ही द्रोण को 'गुरू-ऋण' चुका,
वह वीर पहुँचा व्यूह में, न कराल शस्त्रों से रूका ।।
जब वायु-विक्रम भीम पर वश द्रोण का न वहाँ चला,
हो क्रुद्ध उन कुल-दीप ने तब पाण्डओं का दल मला।

**62**फिर धर्मभीरू आजातरिपु को युद्ध से विचलित किया,
इस भाँति निज अपमान का अभिमान-युत बदला लिया।।
दैत्यारी ने ज्यों भूमि-हित था सिन्धु को विदलित किया,
उस ओर त्यों ही भीम ने भी व्यूह को विचलित किया।
होने लगे रिपु नष्ट यों उनके प्रबल-भुजदण्ड से,
होते तृणादिक खण्ड ज्यों वातूल-जाल-प्रचण्ड से ।।
मिल दुष्ट-दुर्योधन-अनुज तब भीम से लड़ने लगे,
पर शीघ्र मर मर कर सभी वे भूमि पर पड़ने लगे।
अम्भोज-वन को मत्त गज करता यथा मर्दित स्वत:,
मारा वृकोदर ने उन्हें झट झपट झूम इतस्तत:।।
होकर पराजित, भीत कातर, शीघ्र उस बलधाम से,
सब सैन्य हाहाकार कर भगने लगी संग्राम से।
तब वीर कर्ण समक्ष सत्वर उग्र-साहस-युत हुआ ,
उस काल दोनों में वहाँ पर युद्ध अति अद्भुत हुआ ।।
बहु वाण सहकर कर्ण के मारी वृकोदर ने गदा,
सम्मुख चली इस भाँति वह प्रत्यक्ष मानो आपदा।
पर वज्र सम जब तक गिरे पर गदा वह भीम की,
रथ छोडने में शीघ्रता राधेय ने निस्सीम की ।।
वह तो किसी विध बच गया झट कूद रथ के द्वार से,
पर सूत, हय, रथ नष्ट होने से बचे न प्रहार से।
हो अति कुपित वह वीर तब झट दूसरे रथ पर चढ़ा,
मध्याह् का मार्तण्ड मानो था महा धुति से मढ़ा।।
शर मार तत्क्षण भीम को व्रण-पूर्ण उसने कर दिया,
बलवन्त-वीर वसन्त ने किंशुक यथा विकसित किया।
करते हुए तब देह-रक्षा मृत गजों की ढ़ाल से,
बढ़ने अगाड़ी ही लगे वे शीघ्र तिरछी चाल से ।।

63पर, अर्जुनाधिक पाण्डवों का वध न करने के लिए,
करूणार्द्र होकर “कर्ण”[15] ने थे वचन कुन्ती को दिये।
पाकर सुअवसर भी इसी से सोचकर उस बात को,
निर्जीव मात्र किया नहीं उसने वृकोदर-गात को।।
हँसता हुआ तब भीम का उपहास वह करने लगा –
“रे खल ! खड़ा रह, क्यो समर से दूर फिरता है भगा ?
तुढसे बनेगा क्या, भला जो पेट ही भर जानता !
रे मूढ़ ! अपने को वृथा ही वीर है तू मानता ।।”
प्रण था धनञ्जय ने किया “राधेय”[16] के भी घात का,
उत्तर दिया कुछ भीम ने इससे न उसकी बात का।
अति रोष तो आया उन्हें तो भी उसे मारा नहीं,
सम्मान से भी धर्म-बन्धन हो किसे प्यारा नहीं?

[15] कर्ण वास्तव में कुन्ती के पुत्र थे। भारतीय युद्ध होने के पहले कुन्ती ने एक दिन कर्ण से यह बात कही और प्रार्थना की कि वे दुर्योधन का पक्ष छोड़ कर युधिष्ठिर के पक्ष में हो जायें, पर दृढ़ प्रतिज्ञ कर्ण ने ऐसे समय दुर्योधन का साथ छोड़ देना धर्मविरूद्ध समझा-; तथा माता समझ कर उन्होंने कुन्ती को यह वचन दिया कि अर्जुन के सिवा और पाण्डव को वे युद्ध में न मारेंगे। सी से अवसर पाकर भी उन्होंने भीमसेन को नहीं मारा।

[16] राधेय – कर्ण क्योंकि जन्म के बाद कुन्ती द्वारा त्याग दिये जाने पर उसका लालन पालन राधा और अधिरथ ने किया था।



## जयद्रथ वध - मैथिलीशरण गुप्त

## षष्ठ सर्ग

64 उस ओर भूरिश्रवा से वीरा सात्यकि लड़ रहा,
झंझानिल प्रेरित जलद ज्यों हो जलद से अढ रहा।
बहु युद्ध करने से प्रथम ही था यद्यपि सात्यकि थका,
पर देख अर्जुन को निकट उत्साह से वह था छका।।
उस काल दोनों में परस्पर युद्ध हुआ वह ऐसा हुआ,
है योग्य कहना बस यही-अद्भुत वही वैसा हुआ,
सब वीर लड़ना छोड़ क्षण भर देखने उसको लगे,
कह धन्य- धन्य पुकार कर सब रह गये गुण पर ठगे।
रथ- अश्व दोनों के शरों से साथ दोनों के मरे ,
ब्रण- पूर्ण दोनों हो गये तो भी न वे मन में डरे।
करने लगे फिर क्रुद्ध दोनों बाहु युद्ध-विशुद्ध यों-
युग गिरि सपक्ष समक्ष हो लड़ते विपक्ष- विरुद्ध ज्यों-
लड़ते हुए सात्यकि हुआ जब श्रमिक शोणित से सना,
तब खड्ग से भूरिश्रवा ने शीश चाहा काटना।
पर वार ज्यों ही कर उठाकर वेग से उसने किया,
त्यों ही धनंजय के विशिख ने काट उसका कर दिया।
करबाल -युत जब केतु -सम भूरिश्रवा का कर गिरा,
सब शत्रु तब कहने लगे इस कार्य्य को अनुचित निरा।
वृषसेन, कर्ण, कृपादि ने धिक्कार अर्जुन को दिया-
धिक् धिक् धनंजय ! पापमय दुष्कर्म यह तुमने किया।

65 बोले वचन तब पार्थ उनसे लीन होकर रोष में-
क्या निज जनों का त्राण सम्मिलित है दोष में?
मेरा नियम यह है, जहँ तक बाण मेरा जायगा,
अपने जनों को आपदा से वह अवश्य बचायगा।
नास्तिक मनुज भी विपद में करते विनय भगवान से,
देते दुहाई धर्म्म की त्यों आज तुम भी ज्ञान से।
लज्जा नहीं आती तुम्हें उपदेश देते धर्म्म का ?
आती हँसी तुम पापियों से नाम सुन सत्कर्म का ॥
देखे बिना निज कर्म पहले बोध देना व्यर्थ है,
होता नहीं सद्धर्म कुछ उपदेश के ही अर्थ है।
तुम सात ने जब वध किया था एक बालक का यहाँ
रे पामरो ! तब यह तुम्हारा धर्म सारा था कहाँ ?
पापी मनुज भी आज मुँह से राम नाम निकालते !
देखो भयंकर भेड़िये भी आज आँसू डालते !
आजन्म नीच अधर्मियों के जो रहे अधिराज हैं-
देते अहो ! सद्धर्म की वे भी दुहाई आज है !!
सुनकर वचन यों पार्थ के चुप रह गये वैरी सभी,
दोषी किसी के सामने क्या सिर उठा सकते कभी?
भूरिश्रवा का वध किया ले खड्ग सात्यकि ने वही,
जिसकी सिरोही सिर उसी का उक्ति यह कर दी सही ॥
उत्साह संयुक्त उस समय ही भीम आ पहुँचे वहाँ ,
मिलकर चले फिर शीघ्र सब था सिंधुराज छिपा जहाँ।
पहुँचे तथा वे जब वहाँ निज मार्ग निष्कंटक बना ,
कृप, कर्ण, शल्य, द्रोण से करना पड़ा तब सामना ॥



66 खल शकुनी दुःशासन सहित जो जानता छल- कर्म्म को
पहुँचा वहाँ कुरुराज भी पहने अलौकिक वर्म को ,
पीछे जयद्रथ को किये दृढ व्यूह -सा आगे बना,
करने लगे संग्राम वे करके विजय की कामना ॥
लड़ते वरुण- यक्षेश-युत देवेंद्रन दैत्यों से यथा,
लड़ने लगे अर्जुन वहाँ पर भीम सात्यकि-युत तथा।
दोनों तरफ से छूटते थे बाण विद्युत खंड ज्यों,
अति घोर मारुत-तुल्य रव थे कर रहे कोदंड त्यों।
रथ-अश्व भी मिलकर परस्पर सामने बढ़ने चले,
थे एक पर वे एक मानो चोटकर चढ़ने चले,
थे वीर यों शोभित सभी रँग कर रुधिर की धार से,
होते सुशोभित शैल ज्यों गैरिक छटा-विस्तार से ॥
इस ओर थे ये तीन ही उस ओर वे छै सात थे,
तिस पर असंख्य शूर उनके कर रहे आघात थे।
पर कर रहे वर वीर ये वीरत्व व्यक्त विशेष थे,
मानो प्रबल तीनों बलि विधि , विष्णु और महेश थे ॥
तब कर्ण ने दश-दश शरों से बिद्ध कर हरि- पार्थ को,
दर्शित किया मानों वहाँ दुगने प्रबल पुरुषार्थ को ।
पर सूत, हय, रथ और उसका नष्ट करके चाप भी,
कर चौगुना विक्रम हुए शोभित धनंजय आप भी ॥
तत्काल ही फिर लक्ष्य करके कर्ण के वर वक्ष को ,
छोडा कपिध्वज ने कुपित हो एक बाण समक्ष को।
पर बीच में ही द्रोण-सुत ने काट उसकों बाण से ,
जाते हुए लौटा लिये उस वीरवर के प्राण-से।

67 फिर एक साथ असंख्य शर सब शत्रुओं ने मार के,
नरसिम्ह अर्जुन को किया ज्यों पंजरस्थ प्रचार के।
पर भस्म होता है यथा ईंधन कराल कृशानु से,
ऐंद्रास्त्र से कर नष्ट वे शर पार्थ प्रकटे भानु-से ॥
टंकार ही निर्घोष था, शर-वृष्टि ही जल-वृष्टि थी,
जलती हुई रोषाग्नी से उद्दीप्त विद्युत दृष्टि थी।
गांडीव रोहित-रूप था, रथ ही सशक्त समीर था,
उस काल अर्जुन वीर वर अद्भुत जलद गंभीर था॥
थे दिव्या -वर पाए हुए सब शत्रु भी पूरे बली,
अतएव वे भी स्थिर रहे सह पार्थ-शर धारावली।
इस ओर यों ही हो रहा जब युद्ध यह उद्दंड था,
उस ओर अस्ताचल –निकट तब जा चुका मार्तंड था॥
फिर देखते ही देखते वह अस्त भी क्रम से हुआ,
कब तक रहेगा वह अटल जो क्षीन- बल श्रम से हुआ !
प्रण पूर्ण पार्थ न कर सके, रवि प्रथम ही घर को गया,
संभावना ही थी न जिसकी हाय ! यह क्या हो गया !
उस काल पश्चिम ओर रवि की रह गई बस लालिमा
होने लगी कुछ कुछ प्रकट- सी यामिनी की कालिमा।
सब कोण- गण शोकित हुए विरहाग्नि से डरते हुए,
आने लगे निज निज ग्रहों को विहग रव करते हुए॥
यों अस्त होना देख रवि का पार्थ मानो हत हुए,
मुंदते कमल के साथ वे भी विमुख, गौरवगत हुए।
लेकर उन्होंने स्वास ऊँचा, वदन नीचा कर लिया,
संग्राम करना छोड़कर गांडीव रथ में रख दिया ॥

68 पूरी हुई होगी प्रतिज्ञा पार्थ की, इससे सुखी,
पर चिह्न पाकर कुछ न उसके व्यग्र चिंतायुक्त दुखी,
राजा युधिष्ठिर उस समय दोनों तरफ शोभित हुए,
प्रमुदित न विमुदित उस समय के कुमुद- सम शोभित हुए ॥
इस ओर आना जान निशि का थे मुदित निशिचर बड़े,
उस ओर प्रमुदित शत्रुओं के हाथ मूछों पर पड़े।
दुर्योधनादिक कौरवों के हर्ष का क्या पार था-
मानो उन्होंने पा लिया त्रैलोक्य का अधिकार था ॥
बोला जयद्रथ से वचन कुरुराज तब सानंद यों-
हे वीर ! रण में अब नहीं तुम घूमते स्वच्छंद क्यों ?
अब सूर्य के सम पार्थ को भी अस्त होते देख लो,
चलकर समस्त विपक्षियों को व्यस्त होते देख लो,
कहकर वचन कुरुराज ने यों हाथ उसका धर लिया,
कर्णादि के आगे तथा उसको खड़ा फिर कर दिया।
उस काल निर्मला- मुकुल- सम उसका वदन दर्शित हुआ,
पाकर यथा अमरत्व वह निज हृदय में हर्षित हुआ।
खल शत्रु भी विश्वास जिनके सत्य को यों कर रहे,
निश्चिंत, निर्भय,सामने ही मोद नद में तर रहे।
है धन्य अर्जुन के चरित्र को, धन्य उसका धर्म है,
क्या और हो सकता आहो! इससे अधिक सत्कर्म है!
वाचक विलोको तो जरा, दृश्य क्या मार्मिक अहो?
देखा कहीं अन्यत्र भी क्या शील यों धार्मिक कहो?
कुछ देखकर ही मत रहो, सोचो विचारों चित्त में,
बस, तत्व है अमरत्व का वर वृत्तरूपी वित्त में,

69 यह देख लो निज धर्म्म का सम्मान ऐसा चाहिए,
सोचों हृदय में सत्यता का ध्यान जैसा चाहिए।
सहृदय जिसे सुनकर द्रवित हों चरित वैसा चाहिए,
अति भव्य भावों का नमूना और कैसा चाहिए !
क्या पाप की ही जीत होती हारता है पुण्य ही?
इस दृश्य को अवलोक कर तो जान पड़ता है यही !
धर्म्मार्थ दुख सहे जिन्होंने वे पार्थ मरणासन्ना हैं।
दुष्कर्म ही प्रिय हैं जिन्हें वे धुर्त्तराष्ट्र प्रसन्न हैं !
परिणाम सोच न भीम-सात्यकि रह सके क्षण भर खड़े,
हा कृष्णा ! कह हरि के निकट बेहोश होकर गिर पड़े,
यों देखकर उनकी दशा दृग बंद कर अरविंद से,
कहने लगे अर्जुन वचन इस भाँति फिर गोविंद से-
रहते हुए तुम- सा सहायक प्रण हुआ पूरा नहीं !
इससे मुझे है जान पड़ता भाग्य -बल ही सब कहीं।
जलकर अनल में दूसरा प्रण पालता हूँ मैं अभी,
अच्युत! युधिष्ठिर आदि का सब भार है तुम पर सभी।।
संदेश कह दीजो यही सबसे विशेष विनय भरा-
खुद ही तुम्हारा जन्म धनंजय धर्म के हित है मरा।
तुम भी कभी निज प्राण रहते धर्म को मत छोड़ियों,
वैरी न जब तक नष्ट हों मत युद्ध से मुँह मोड़ियों
थे पांडु के सुत चार ही, यह सोच धीरज धारियों,
हों जो तुम्हारे प्रण-नियम उनको कभी न बिसारियो।
है इष्ट मुझको भी यही यदि पुण्य मैंने हों किये,
तो जन्म पाऊँ दूसरा मैं वैर -शोधन के लिए ।।



70 कुछ कामना मुझको नहीं है इस दशा में स्वर्ग की,
इच्छा नहीं रखता अभी मैं अल्प भी अपवर्ग की।
हां ! हां! कहाँ पूरी हुई मेरी अभी आराधना,
अभिमन्यु विषयक वैर की है शेष अब भी साधना!
कहना किसी से और मुझको अब न कुछ संदेश है,
पर शेष दो जन हैं अभी जिनका बड़ा ही क्लेश है!
कृष्णा -सुभद्रा से कहूँ क्या? यह न होता ज्ञात है,
मैं सोचता हूँ किंतु हां! मिलती न कोई बात है।
जैसे बने समझा-बुझाकर धैर्य सबको दीजियों
कह दीजियों, मेरे लिये मत शोक कोई कीजियों।
अपराध जो मुझसे हुए हों वे क्षमा करके सभी,
कृपया मुझे तुम याद करियो स्वजन जान कभी-कभी।।
हां! धर्मवीर अजातशत्रों! आर्य भीम! हरे हरे !
हां ! प्रिय नकुल सहदेव भ्रातः! उत्तरे ! हा उत्तरे!
हां ! देवि कृष्णे! हा सुभद्रा ! अब अधम अर्जुन चला,
धिक् है- क्षमा करना मुझे -मुझसे हुआ रिपु का भला।
जैसा किया होगा प्रथम वैसा हुआ परिणाम है,
माधव! विदा दो बस मुझे अब, बार-बार प्रणाम है।
इस भाँति मरने के लिए यद्यपि नहीं तैयार हूं,
पर धर्म्म- बंधन- बद्ध हूँ मैं क्या करूँ लाचार हूँ।।
इस भाँति अर्जुन के वचन श्रीकृष्ण थे जब सुन रहे,
हँसकर जयद्रथ ने तभी ये विष- वचन उनसे कहे-
गोविंद! अब क्या देर है प्रण का समय जाता टला !
शुभ-कार्य्य जितना शीघ्र हो है नित्य उतना ही भला ।।

71 सुनकर जयद्रथ का कथन हरि को हँसी कुछ आ गई,
गंभीर श्यामल मेघ में विद्युतच्छटा-सी छा गई।
कहते हुए यों यह न उनका भूल सकता वेश है-
हे पार्थ! प्रण पालन करो, देखो अभी दिन शेष है ।।
हो पूर्ण जब तक पार्थ- प्रति प्रभु का कथन ऊपर कहा,
तब तक महा अद्भुत हुआ यह एक कौतिक-सा आहा !
मार्तंड अस्ताचल निकट घन मुक्त -सा देखा गया,
है जान सकता कौन हरि का कृत्य नित्य नया-नया?
था पार्थ के हित के लिए यह खेल नटवर ने किया,
दिन शेष रहते सूर्य को था अस्त- सा दिखला दिया।
अनुकूल अवसर पर उसे फिर कर दिया यों वक्त है,
वह भक्तवत्सल भक्त पर रहता सदा अनुरक्त है ।।
तत्काल अर्जुन की अचानक नींद मानो हट गई,
सब हो गई उनको विदित माया महा- विस्मयमयी,
अवलोक तब हरि को उन्होंने एक बार विनोद से,
निकटस्थ शीघ्र उठा लिया गांडीव अति आमोद से ।।
इस स्वप्न के-से दृश्य से सब शत्रु विस्मित रह गए,
कर्तव्यमूढ- समान वे नैराश्य - नद में बह गए !
उस काल उनका तेज मानो पार्थ को ही मिल गया,
तब तो सदा से सौ गुना मुख शीघ्र उनका खिल गया ।।
हो भीम सात्यकि भी सजग आनंद रव करने लगे ,
निज यत्न निष्फल देखकर वैरी सभी डरने लगे,
तब सम्मुख स्थित जाल- गत जो था हरिण-सा हो रहा,
उस खल जयद्रथ से कुपित हो यों धनंजय ने कहा-



72 रे नीच! अब तैयार हो तू शीघ्र मरने के लिए,
मेरा यह अवसर समझ, प्रण -पूर्ण करने के लिए।
है व्यर्थ चेष्टा भागने की, मृत्यु का तू ग्रास है,
भज रामनाम नृशंस! अब तो काल पहुँच पास है।
गति देख अन्य न एक भी निज कर्म के दुर्दोष से,
करने लगा तत्क्षण जयद्रथ शस्त्र वर्षा रोष से।
आशा नहीं रहती जगत में त्राण रहने की जिसे,
उसका भयंकर -वेग सहरसा सह्य हो सकता किसे?
पर पार्थ ने सह ली व्यथा सब शत्रु के आघात की,
आनंद के उत्थान में रहती नहीं सुध गास की।
गांडीव से तत्काल वे भी बाण बरसाने लगे,
जो उग्र उल्का-खंड-से चंडच्छटा छाने लगे ।।
कर्णादि ने की व्यक्त फिर भी युद्ध कौशल की कला,
पर हो गई चेष्टा विफल सब, बस न उनका कुछ चला ।।
विचलित दलित करता द्रुमों को प्रबल झंझानिल यथा,
सब शत्रुओं को पार्थ ने पल में किया विह्वल तथा ।।
फिर पुष्प-माला युक्त मंत्रित दिव्य द्युति से ओघ- सा।
रखा धनंजय ने धनुष पर बाण एक अमोघ-सा।
क्षण भर उसे संधानने में यथा शोभित हुए,
हों भाल -नेत्र -ज्वाल हर ज्यों छोड़ते क्षोभित हुए ।।
वह सर इधर गांडीव गुण से भिन्न जैसे ही हुआ,
धड़ से जयद्रथ का उधर सिर छिन्न वैसे ही हुआ।
रक्ताक्त वह सिर व्योम में उड़ता हुआ कुछ दूर -सा
दीखा अरुणातम उस समय के अस्त होते सुर सा ।।

73 अर्जुन विशिख तो लौट आया पर न रिपु का सिर फिरा,
अपने पिता की गोद में ही वह अचानक जा गिरा।
रण से अलग उनका पिता तप कर रहा था रत हुआ,
भगवान की इच्छा, तनय के साथ वह भी हत हुआ।
श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीम, सात्यकि शंख-रव करने लगे,
हर्षित हुए सबके वदन, मन मोद से भरने लगे।
प्रत्यक्ष कौरव पक्ष की तब नासिका-सी कट गई,
मानों विकल कुरुराज की शौकार्त्त छाती फट गई।



**जयद्रथ-वध सप्तम सर्ग**

74 इस विधि जयद्रथ-वध हुआ पूरा हुआ प्रण पार्थ का;
अब धर्मराजार्जुन-मिलन है, मिलन ज्यों धर्मार्थ का।
वर्णन अत: उसका यहाँ पर है उचित ही सर्वथा,
सर्वत्र ही कथनीय है सुख-सम्मिलन की शुभ-कथा ।।
सुर्यास्त होना जानकर फिर जब लड़ाई रूक गई,
निष्प्रभ पराजित कौरवों की रण-पताका झुक गई,
तब नृप युद्धिष्टिर के निकट आनन्द से जाते हुए,
बोले वचन हरि पार्थ से रणभूमि दिखलाते हुए –
"हे वीर ! देखो, आज तुम संग्राम में कैसे लड़े,
मरकर तुम्हारे हाथ से ये शत्रु कितने हैं पड़े!
ज्यों कंज-वन की दुर्दशा कर डालता गजराज है,
शोभित तुम्हारे शौर्य से त्यों यह रणस्थल आज है ।।
जो तुच्छ अपने सामने थे इन्द्र को भी मानते –
जो कुछ कहो बस हैं हमीं, जो थे सदा यह जानते,
वे शत्रु, देखो, आज भू पर सर्वदा को सो रहे;
हैं मर चुके लाखों तथा घायल हजारों हो रहे।
झुकते किसी को थे न जो नृप-मुकुट रत्नों से जड़े,
वे अब श्रंगालों के पदों को ठोकरें खाते पड़े।
"पोशी"[17] समझ माण्क्य को वह बिहग देखो, ले चला,
पड़ भोग को ही भ्रान्ति में संसार जाता है छला ।।

[17] बोटी

75 हो मुग्ध गृद्ध किसी किसी के लोचनों को खींचते,
यह देख कर घायल मनुज अपने दृगों को मींचते।
मानो न अब भी वैरियों का मोह पृथ्वी से हटा,
लिपटे हुए उससे पड़े, दिखला रहे अन्तिम छटा!
यद्यपि हमारे रथ-हयों को श्रम हुआ सविशेष है,
पर भूल-सा उनको गया इस समय सारा क्लेश है।
"पश्वदि"[18] भी निज स्वामियों के भावो को पहचानते,
सब निज जनों के दु:ख में दुख, सौक्य में सुख मानते॥
इस ओर देखो, रक्त की यह कीच कैसी मच रही!
है पट रही खण्डित हुए बहु रूण्ड-मुण्डों से मही।
कर-पद असंख्य कटे पड़े, शस्त्रादि फैले हैं तथा,
रंगस्थली ही मृत्यु की एकत्र प्रकटी हो यथा!
दुर्योधनानुज हैं पड़े ये भीम के मारे हुए,
काम्बोजृ-नृप वे सात्यकी के हाथ से हारे हुए।
मृत अच्युतायु-"श्रुताय"[19] हैं ये, वह "अलम्बुज"[20] है मरा;
यह "सोमदत्तात्मज"[21] पड़ा है, रक्त-रंजित है धरा॥
यद्यपि निहत होकर पड़े ये वीर अब नि:शक्त है,
पर कौरवों का तेज अब बी कर रहे थे व्यक्त हैं।
बल-विभव में कुरूराज सचमुच दूसरा सुसराज है,
पाई विजय प्रारब्ध से ही पार्थ! तुमने आज है॥"
श्रीकृष्ण के प्रति वचन तब बोले धनंजय भक्ति से,-
"क्या कार्य कर सकता हरे ! मै आप अपनी शक्ति से !



76 है सब तुम्हारी ही कृपा, हूँ नाम का ही वीर मैं;
भूला नहीं अब तक तुम्हारा वह विराट शरीर मैं,
है कालचक्र सदा तुम्हारा चल रहा संसार में,
सर्वत्र तेज: पुज्ज-सा है जल रहा संसार में।
पर देखने में चर्म के ये चक्षु अति असमर्थ है,
तब तो मनुज कर्तृव्य का अभिमान करते व्यर्थ हैं॥
किसकी महत्ता थी कि जिसने आज प्रण की पूर्ति की ?
हिल जायं पत्ता तो कहीं सत्ताविना इस मूर्ति की !
चलता 'सुदर्शन' यदि न तो दिन ढल गया होता तभी,
अर्जुन चितानल में कभी का जल गया होता अभी !
होते तुम्हारे कार्य सारे गूढ़ भेदों से भरे,
हृदयस्थ, तुम जो कुछ कराते, मैं वही करता हरे !
अनुचित-उचित के ज्ञान को कुछ भी नहीं मैं जानता,
जो प्रेरणा करता विमल मन, मैं उसी की मानता॥"
"हॉ, एक बात अवश्य है" – रूककर धनंजय ने कहा-
"यद्यपि तुम्हारा ही किया है जो जगत में हो रहा।
बनते नहीं हो किन्तु उसके तुम स्वयं कारण कहीं,
क्या ही चतुर हो, दोष-गुण करते स्वयं धारण नहीं॥"
हँसते हुए तब पार्थ बोले अन्य विध वचनावली –
"गोविन्द हो तुम बड़े ही क्रुर, मायावी, छली।
रवि को छिपाने के प्रथम मुझको सचेत किया नहीं;
आ जाय मरने की दशा ऐसी हँसी होती कहीं?"
हँसने लगे तब हरि अहा ! पूर्णोन्दु-सा मुख खिल गया,
हँसना उसी में भीम, अर्जुन, सात्यकी का मिल गया !

---

18 पशुआदिक

19 अम्बुष्ट देश का राजा

20 एक राक्षस वंशी राजा जिसे भीम के पुत्र घटोत्कच ने मारा था।

21 शान्तनु के बड़े भाई बाहीक के पुत्र सोमदत्त का बेटा।

77 थे मोद और विनोद के सब सरस झोंके झेलते,
भगवान भक्तों से न जाने खेल क्या-क्या खेलते?
उन्मत्त विजयोल्लास से सब लोग मत्त-गयन्द-से,
राजा युधिष्ठिर के निकट पहुँचे बड़े आनन्द से।
देखा य़ुधिष्ठर ने उन्हें जब, जान ली निज जय तभी,
मुख-चिन्ह से ही चित्त की बुध जान लेते हैं सभी ॥
तब अर्जुनदिक ने उन्हे बढ़कर प्रणाम किया वहाँ,
सिर पर उन्होंने हाथ रख सुख दिया और लिया वहॉ,
सब लोग उनको घेर कर थे उस समय उत्सुक खड़े,
बोले युधिष्ठिर से "स्वयंभू"[22] सुन्दर सुमन मानो झड़े –
"हे तात ! जीत हुई तुम्हारे पुण्य-पूर्ण प्रताप से,
रण में जयद्रथ-वध हुआ, छूटे धनंजय ताप से।
तुम्हने इन्हे सौंपा सबेरे था हमारे हाथ में,
सो लिजिये, अपनी धरोहर, सुख-सुयश के साथ में ॥"
सुनकर मधु घन-शब्द को पाते प्रमोद मयुर ज्यों,
श्रीकृष्ण के सुन वचन सबको सुख हुआ भरपुर त्यों।
राजा, युधिष्टिर हर्ष से सहसा न कुछ भी कह सके,
थे भक्ति के गुरू-भार से मानो वचन उनके थके ॥
"साक्षात् चराचरनाथ, तुम रखते स्वयं जब हो दया,
आश्चर्य क्या फिर जो जयद्रथ, युद्ध में मारा गया ?
तो भी इसे सुन कर हृदय में सुख समाता है नहीं,
साधन-सफलता-सुख-सदृश सुख-दृष्टि में आता नहीं ॥
बहु विज्ञ तत्वज्ञानियों ने बात यह मुझ से कही –
माधव ! तुम्हें जो इष्ट होता सर्वदा होता वही।

[22] श्रीकृष्ण



78 अज्ञानता से मूर्ख जन मानव तुम्हे है मानते,
ज्ञानी, विवेकी, विज्ञवर, विश्वेश तुमको जानते।
जो कुछ किया तुमने स्वयं हे देवदेव ! हुआ वही,
जो कुछ करोगे तुम स्वयं आगे वही होगा सही !
जो कुछ स्वयं तुम कर रहे हो, हो रहा अब है तथा,
हैं हेतुमात्र सदैव हम, कर्ता तुम्हीं हो सर्वथा ॥
हो निर्विकार तथापि तुम हो भक्तवत्सल सर्वदा,
हो तुम निरीह तथापि अदभुत सृष्टि रचते हो सदा।
आकार-हीन तथापि तुम साकार सन्तत सिद्ध हो,
सर्वेश होकर भी सदा तुम प्रेम-वश्य प्रसिद्ध हो ॥
करते तुम्हारा ही मनन मुनि, रत तुम्हीं में ऋषि सभी,
सन्तत तुम्हीं को देखते हैं, ध्यान में योगीन्द्र भी।
विख्यात वेदो में विभो! सबके तुम्हीं आराध्य हो,
कोई न तुमसे है बड़ा, तुम एक सबके साध्य हो ॥
पाकर तुम्हें फिर और कुछ पाना न रहता शेष है;
पाता न जब तक जीव तुमको भटकता सविशेष है।
जो जन तुम्हारे पद-कमल के असल मधु को जानते,
वे मुक्ति की भी कर अनिच्छा तुच्छ उसको मानते ॥
हे सच्चिदानन्द प्रभो ! तुम नित्य सर्व सशक्त हो,
अनुपम, अगोचर, शुभ, परात्पर, ईश-वर अव्यक्त हो।
तुम ध्येय, गेय, अजेय हो, निज भक्त पर अनुरक्त हो,
तुम भव विमोचन, पद्म, लोचन, पुण्य, पदमासक्त हो,
तुम एक होकर भी अहो? रखतें अनेकों वेश हो,
आद्यन्त-हीन, अचिन्त्य, अद्भुत, आत्म-भू, अखिलेश हो।
कर्ता तुम्हीं, भर्ता तुम्हीं, हर्ता तुम्हीं हो सृष्टि के,
चारो पदार्थ दयानिधे ! फूल हैं तुम्हारी दृष्टि के ॥

79 हे ईश ! बहु उपकार तुमने सर्वदा हम पर किये,
उपहार प्रत्युपकार में क्या दें तुम्हें इसके लिए ?
है क्या हमारा सृष्टि में ? यह सब तुम्हीं से है बनी,
सन्तत ऋणी हैं हम तुम्हारे, तुम हमारे हो धनी ।।
जय दीनबन्धो, सौख्य-सिन्धो, देव-देव,दयानिधे,
जय जन्म-मृत्यु –विहीन शाश्वत, विश्व-वन्ध, महाविधे !
जय पूर्ण, पुरूषोत्तम, जनार्दन, जगन्नाथ, जगद्गते,
जय-जय विभो, अच्युत हरे, मंगलमते, मायापते !"
कहते हुए यों नृप युधिष्ठिर मुग्ध होकर रूक गये,
तत्क्षण अचेत-समान फिर प्रभु के पदों में झुक गये।
बढ़कर उन्हें हरि ने हृदय से हर्ष युक्त लगा लिया,
आनन्द ने सत्प्रेम का मानो शुभालिंगन किया ।।
वह भक्त का भगवान से मिलना नितान्त पवित्र था,
प्रत्यक्ष ईश्वर-जीव का समझ अतीव विचित्र था।
मानो सुकृत आकर स्वयं ही शील से थे मिल रहे,
युग श्याम-गौर सरोज मानो साथ ही थे खिल रहे ।।
करने लगे सब लोग तब आनन्द से जयनाद यों-
त्रैलोक्य को हों दे रहे निर्भय विजय-संवाद ज्यों।
अन्यत्र दुर्लभ है भुवन में बात यों उत्कर्ष की,
सचमुच कहीं समता नहीं है भव्य भारतवर्ष की ।।
दुख दु:शलादिक का अभी कहना यदपि अवशिष्ट है,
पर पाठकों का जी दुखाना अब न हमको इष्ट है।
कर बार-बार क्षमार्थना होते विदा अब हम यहीं,
सुख के समय, दुख की कथा अच्छी नहीं लगती कहीं ।।



**UNIT I**
**Poetry: Jayadratha Vadh : Maithilisharana Gupt**
**खण्डकाव्य : जयद्रथ वध : मैथिलीशरण गुप्त**

**UNIT II**
**Grammar: Linga, Vachana, Karak, Kaal, Pratyaya and Upasarga**
**व्याकरण : लिंग, वचन, काल, कारक, प्रत्यय और उपसर्ग**

**UNIT III**
**Types of Literature: Natak, Upanyas, Kavya and Nibandh**
**साहित्यिक प्रकारों का परिचय: नाटक, उपन्यास, काव्य और निबन्धों की परिभाषा, प्रकार एवं तत्त्व**

**'लिंग'**

'लिंग' संस्कृत भाषा का एक शब्द है जिसका अर्थ होता है – 'चिन्ह' या 'निशान'। लिंग का अभिप्राय भाषा की ऐसी अनुकूल परिस्थितियों से है, जो वाक्य के कर्ता के अनुसार बदल जाते हैं और जिससे यह पता चलता है कि अमुक शब्द स्त्रीजाति के लिए प्रयुक्त हुआ है या पुरूषजाति के लिए, विश्व की लगभग सभी भाषाओं में किसी न किसी प्रकार की लिंग व्यवस्था होती है।

हिन्दी में **'दो लिंग'** होते हैं।

**पुलिं स्त्रीलिंग**

जबकि संस्कृत में तीन लिंग होते हैं।

1. **पुलिंग**
2. **स्त्रीलिंग**
3. **नपुंसक लिंग**

**फारसी** जैसी कुछ भाषाओं में **लिंग नहीं होता** है और **अंग्रेजी** भाषा में **लिंग सिर्फ सर्वनाम** में होता है।

**लिंग की परिभाषा** –शब्द की जाति को **'लिंग'** कहते हैं।

संज्ञा के जिस रूप से किसी व्यक्ति या वस्तु की नर या मादा जाति का बोध हो, उसे हिंदी व्याकरण में **'लिंग'** कहते हैं।

संज्ञा शब्दों के जिस रूप से उसके पुरूष या स्त्री जाति होने का पता चलता है, उसे **'लिंग'** कहते हैं।

जैसे – **पुरूष जाति या पुलिंग** – लड़का, मुर्गा, बैल, बकरा, मोर, मोहन, आदि।

**स्त्री जाति या पुलिंग** – लड़की, मुर्गी, गाय, बकरी, मोरनी, मोहनी आदि।

'चिन्ह' और 'निशान' संज्ञा का ही होता है। 'संज्ञा' किसी व्यक्ति, वस्तु या स्थान के नाम को कहते है, अब व्यक्ति या वस्तु या तो 'पुरूषजाति' की होगी या 'स्त्रीजाति' की। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक संज्ञा या तो 'पुलिंग' होगी या 'स्त्रीलिंग'।

**संज्ञा के रूप**

**अप्राणिवाचक संज्ञा** । **जैसे** – प्याली, लोटा, पेड़, पत्ता इत्यादि। (केवल नपुंसक लिंग)

**प्राणिवाचक संज्ञा** । **जैसे** – घोड़ा, घोड़ी, माता, पिता, लड़का लड़की इत्यादि। पुलिंग और स्त्रीलिंग

**लिंग शब्द का निर्धारण कैसे करे?**

हिन्दी व्याकरण में भी लिंग के निर्णय का आधार संस्कृत के कुछ नियमों के अनुसार ही किया जाता है। संस्कृत में हिन्दी से अलग एक तिसरा लिंग भी है, जिसे 'नपुंसकलिंग' कहते हैं। नपुंसकलिंग में अप्राणीवाचक संज्ञाओं को रखा जाता है। हिन्दी न जानने वालों को संबसे अधिक कठिनाई अप्राणीवाचक संज्ञाओं के लिंग निर्धारण में ही होती है। इस तरह की गलतियाँ करते हुए हम अक्सर विदेशी लोगों या भारत में भी दक्षिण भारतीय लोगों को देख सकते हैं जिनकी मातृभाषा हिन्दीं नहीं है। जिनकी मातृभाषा हिन्दी होती है, उन्हें सहज व्यवहार के कारण लिंग निर्णय में ज्यादा परेशानी नहीं होती लेकिन इनमें भी एक समस्या है कि कुछ पुलिंग शब्दों के पर्यायवाची स्त्रीलिंग हैं और कुछ स्त्रीलिंग के पुलिंग। जैसे – 'पुस्तक' को स्त्रीलिंग कहते है और 'ग्रन्थ' को पुलिंग।

**व्याकरण के विद्वानों ने लिंग निर्णय के कुछ नियम बताये हैं –**

**1** जब प्राणीवाचक संज्ञा पुरूष जाति का बोध कराएँ तो वे पुलिंग होते हैं और जब स्त्रीलिंग का बोध कराएँ तो 'स्त्रीलिंग' होती हैं। **जैसे** – कुत्ता, हाथी, शेर, बकरा, घोड़ा आदि **पुलिंग** हैं। **जैसे** – कुतिया, हथनी, शेरनी, बकरी, घोड़ी आदि **स्त्रीलिंग** हैं।

**2** कुछ प्राणीवाचक संज्ञा जब पुरूष और स्त्री दोनों लिंगों का बोध कराते हैं तो वे नित्य **'पुलिंग'** में शामिल किये जाते है। जैसे खरगोश, खटमल, गेंडा, भालू, उल्लु आदि।

**3** कुछ, प्राणीवाचक संज्ञा जब पुरूष और स्त्री दोनों का बोध करे तो नित्य **'स्त्रीलिंग'** में शामिल हो जाते हैं। जैसे – कोमल, चील, तितली, छिपकली आदि।

**लिंग के भेद :इस पूरी सृष्टि में तीन मुख्य जातियाँ हैं –**

1. **पुरूष**
2. **स्त्री**
3. **जड़**

अनेक भाषाओं में इन्हीं तीन जातियों के आधार पर लिंग के तीन बेद किये गये हैं लेकिन सके विपरीत, हिन्दी व्याकरण में नपुंसकलिंग नहीं होता है। अत: हिन्दी में सारे पदार्थवाचक शब्द, चाहे वे चेतन हों या जड़ हों, स्त्रीलिंग और पुलिंग, इन दो लिंगों में ही विभक्त हैं।

**पुलिंग**

जिन संज्ञा के शब्दों से पुरूष जाति का पता चलता है, उसे पुलिंग कहते है। जैसे – पिता, लड़का, राजा, घोड़ा, आदमी, शेर, मकान, लोहा, नाटक, मुर्गा, बैल आदि।

पुलिंग के अपवाद – कुछ ऐसे भी शब्द होते है जिन्हें मुख्यत: अज्ञानता के कारण पुलिंग होते हुए भी स्त्रीलिंग समझने की भूल की जाति है, जैसे पक्षी, फरवरी, एवरेस्ट, मोतिया, दिल्ली, स्त्रीत्व आदि।

**पुलिंग की पहचान**

1 **जिन शब्दों के पीछे** अ,त्व,आ,आव,पा,पन,न आदि प्रत्यय आये वे पुलिंग होते हैं।

**जैसे** – मन, तन, वन, शेर, सतीत्व, देवत्व, मोटापा, चढ़ाव, बुढ़ापा, लड़कपन, बचपन, लेन-देन।

2 **पर्वतों, कुछ महिनों, दिनों, धातुओं, द्रव्यों के नाम पुल्लिंग होते है।**

**जैसे** - हिमालय, फरवरी, सोमवार, सोना, तेल, पेट्रोल, घी, शरबत, दही, दूध आदि।

3 **कुछ पेड़ो, देशों, कुछ नक्षत्रों, सागरों, समय, अनाजों के नाम पुल्लिंग होते है। जैसे** – पीपल, भारत, सुर्य-चंद्र, हिन्द महासागर, मिनट, गेंहूँ आदि।

**कुछ पुलिंग शब्द और उनके प्रयोग**

कुछ पुलिंग शब्द और उनके प्रयोग के उदाहरण देखते हैं। इनमें कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिन्हें आप आकारांत या इकारांत होने के कारण स्त्रीलिंग समझने की भूल करते हैं। शोध

1 **प्राण** – उसके प्राण उड़ गये।

2 **घी** – घी महँगा है।

3 **आईना** – आईना टूट गया

4 **आयोजन** – पूजा का आयोजन हो रहा है।

5 **पहिया** – पहिया टूट चूका है।

6 **मोती** – मोती चमकता रहता है।

7 **सींग** – गाय के दो सींग होते है।

8 **पानी** – पानी साफ़ है।

9 **दही** – दही बहुत खट्टा होता है।

10 **कुआँ** – कुआँ बहुत गहरा है।

**स्त्रीलिंग**

जिस संज्ञा शब्दों से स्त्री जाति का पता चलता हैं, उसे 'स्त्रीलिंग' कहते हैं।

**जैसे** – माता, लड़की, बकरी, रानी, नदी, शाखा, मुर्गी, गाय, घोड़ी, लोमड़ी आदि।

स्त्रीलिंग के अपवाद – **जैसे** - जनवरी, मई, जुलाई, मक्खी, ज्वार, अरहर, मूंग, चाय, लस्सी, चटनी आदि।

**स्त्रीलिंग प्रत्यय**

जब पुलिंग शब्दों को स्त्रीलिंग बनाया जाता है, तब प्रत्ययों को शब्दों में जोड़ा जाता है, जिन्हें '**स्त्रीलिंग प्रत्यय**' कहते हैं। **जैसे – ई** – बड़ा-बड़ी, भला-भली। **इनी** – योगी-योगिनी, कमल-कमलिनी। **इन** – धोबी-धोबीन, तेल-तेली। **नि** – मोर-मोरनी, चोर-चोरनी। **आनी** – जेठ-जेठानी, देवर-देवरानी। **आइन** - ठाकुर-ठाकुराइन, पंडित-पण्डिताइन। **इया** – बेटा-बिटिया, लोटा-लुटिया आदि।

**स्त्रीलिंग की पहचान**

1 जिन संज्ञा शब्दों के पीछे **ख, ट, वट, हट, आनी**, आदि आये वे सभी स्रिलिंग होते हैं। **जैसे** – कड़वाहट, आहट, बनावट, शत्रुता, मुर्खता, मिठाई, छाया, प्यास, ईख, भूख, चोक, राख, कोख, देखरेख, झंझट आदि।

2 अनुस्वारांत, ईकारांत, उकारांत, तकारांत, सकारांत आदि संज्ञाएँ आती है वे स्त्रिलिंग होते हैं।

**जैसे** – रोटी, टोपी,नदी, चिट्ठी, उदासी,रात, बात, छत, भीत, लू, बालू, दारू, सरसों, खड़ाऊं, प्यास, वास, साँस, नानी, बेटी, आदि।

3 भाषा, बोलियों तथा लिपियों के नाम स्त्रीलिंग होती है। **जैसे-** हिन्दी, संस्कृत, देवनागरी, पहाड़ी, अंग्रेजी, पंजाबी, गुरूमुखी, फ्रासांसी, अरबी, जर्मन, बंगाली, रूसी।

4 नदियों के नाम स्त्रीलिंग होते हैं।

**जैसे** - गंगा, यमुना, गोदावरी, कावेरी, कृष्णा, व्यास, सतलुज, झेलम ताप्ती, नर्मदा।

5. तारीखों और तिथियों के नाम स्त्रीलिंग होते है।

**जैसे** - पहली, दूसरी, प्रतिपदा, पुर्णिमा, पृथ्वी, अमावस्या, एकादशी, चतुर्थी, प्रथमा आदि।

6 कुछ नक्षत्रों के नाम स्त्रिलिंग हैं।

**जैसे** - अश्विनी, भरणी, रोहणी, रेवती, मृगशिरा, चित्रा आदि।

7 **आभूषणों और वस्त्रों के नाम** स्त्रीलिंग होते हैं। -

**जैसे** - साड़ी, चुन्नी, धोती, टोपी, कमीज, पगड़ी, माला, चूड़ी, बिंदी, कंघी, नथ, अंगुठी आदि।

8 **मसालो के नाम** भी स्त्रीलिंग होते है।

**जैसे** - दालचीनी, लौंग, हल्दी, मिर्च, धनिया, इलायची, अजवाइन, सौंफ आदि।

9. कुछ **शरीर के अंगों** के नाम भी स्त्रीलिंग होते हैं।

**जैसे** - आँख, नाक, जीभ, पलक, उँगली, ठोड़ी

10 कुछ **समूहवाचक संज्ञाएँ** स्त्रीलिंग भी होती हैं। **जैसे** - भीड़, कमेटी, सेना, सभा, कक्षा, आदि।

**कुछ स्त्रीलिंग के शब्द और प्रयोग जिन्हें कभी-कभी भ्रमवंश पुलिंग समझा जाता है।**

**जैसे – आँख** – उनकी आँख बहुत छोटी-छोटी है।

**आग** - घर में आग लग गई।

**इच्छा** - मेरी इच्छा सोने की हैं।

**ईट** - ईट बिलकुल पक चुकी है।

**उम्र** - तुम्हारी उम्र लंबी है।



**कब्र** - क्रब खोदी जा चुकी है।

**कसम** - मैंने उनकी कसम खायी है

**कलम** - कलम टूट चुकी है।

**टाँग** - मेरी टाँग टूटने से बच गई है।

**सजा** - उसे दो साल की सजा हो हुई है।

**शब्दों का लिंग परिवर्तन**

कवि – कवियित्री

अध्यापक – अध्यापिका

लेखक – लेखिका

मालिक – मालकिन

शिक्षक – शिक्षिका

**कुछ शब्द ऐसे भी है, जो स्त्रीलिंग और पुलिंग दोनों रूपों में प्रयोग किए जाते है।**

**जैसे** – राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री, चित्रकार, पत्रकार, प्रबंधक, सभापति, वकिल, डॉक्टर, सेक्रेटरी, गवर्नर, लेक्चर, प्रोफेसर आदि।

निम्नलिखित शब्दों में से एक शब्द पुल्लिंग है, चयन किजिएँ।

1 जनवरी
2 गंगा
3 फरवरी
4 आग

## वचन

- शब्द के जिस रूप से एक या एक से अधिक का बोध होता है, उसे हिन्दी व्याकरण में 'वचन' कहते हैं।
- संज्ञा सर्वनाम विशेषण और क्रिया के जिस रूप से संख्या का बोध हो, उसे 'वचन' कहते हैं।
- अर्थात जिस रूप से किसी व्यक्ति, वस्तु के एक या एक से अधिक होने का पता चलता है, उसे 'वचन' कहते हैं।

**जैसे –**

लड़की खेलती है।
लड़कियाँ खेलती हैं।
फ्रिज में सब्जियाँ रखी हैं।
तालाब में मछलियाँ तैर रही हैं।
उपर्युक्त वाक्यों में लड़की, फ्रिज, तालाब, शब्द एक होने का तथा लड़किया, सब्जियाँ, मछलियाँ एक से अधिक होने का ज्ञान करा रहे हैं। अत: यहाँ लड़की, फ्रिज, तालाब एकवचन के शब्द है तथा लड़किया, सब्जियाँ, मछलियाँ बहुवचन के शब्द है।

**वचन के दो भेद है**

1. **एकवचन**
2. **बहुवचन**

**एकवचन –** संज्ञा के जिस रूप से एक व्यक्ति या एक वस्तु होने का ज्ञान हो, उसे एकवचन कहते है अर्थात जिस शब्द के कारण हमें किसी वस्तु, प्राणी, पदार्थ आदि के एक होने का पता चलता है उसे 'एकवचन' कहते है।

**जैसे –** लड़का, लड़की, गाय, सिपाही, बच्चा, शाखा, नदी, घोड़ा, कमरा, माता, पिता, माला, पुस्तक, टोपी, मैं, वह, यह, गमला, तोता, चूहा आदि।

**बहुवचन –** शब्द के जिस रूप से एक या एक से अधिक व्यक्ति या वस्तु होने का ज्ञान हो, उसे 'बहुवचन' कहते है अर्थात जिस शब्द के कारण हमें किसी व्यक्ति, वस्तु, प्राणी, पदार्थ आदि के एक से अधिक या अनेक होने का पता चलता है उसे 'बहुवचन' कहते हैं।



**जैसे -** लड़के, लड़कियाँ, गायें, कपड़े, टोपियाँ, मालाएँ, माताएँ, पुस्तके, गुरूजन, रोटियां, पेसिलें, स्त्रियाँ, बेटे, बेटियाँ, गमले, चूहे, तोते, घोड़े, घरों, पर्वतों, नदियों, हम, वे, ये, गाड़ियाँ आदि।

**एक वचन और बहुवचन पहचानने के नियम**

1 आदरणीय या सम्मानीय व्यक्तियों के लिए सदैव बहुवचन का प्रयोग किया जाता है, इसके लिए 'एकवचन' व्यक्तिवाचक संज्ञा को ही 'बहुवचन' में प्रयोग कर दिया जाता है।

**जैसे –**

गांधीजी चंपारन आये थे।
शास्त्रीजी बहुत ही सरल स्वभाव के थे।
गुरूजी आज नहीं आये।
पापाजी कल हैदराबाद जायेंगे।

2 संबद्ध दर्शाने वाली कुछ संज्ञायें एकवचन और बहुवचन में एक समान रहती हैं।

**जैसे –**नाना, मामी, ताई, ताऊ, नानी, मामा, चाचा, चाची, दादा, दादी आदि।

3 द्रव्यसूचक संज्ञाओं का प्रयोग केवल एकवचन में ही होता है।

**जैसे –** तेल, घी, पानी, दूध, लस्सी, रायता आदि

4 कुछ शब्द सदैव बहुवचन में प्रयोग किये जाते है।

**जैसे -** दाम, दर्शन, प्राण, आँसू, लोग, अक्षत, होश, समाचार, हस्ताक्षर, दर्शक, भाग्य, केश, रोम, अश्रु आशीर्वाद आदि।

**उदाहरण –**आपके हस्ताक्षर बहुत ही अलग हैं।
लोग कहते रहते हैं।
आपके दर्शन सौभाग्य वालों को मिलते हैं।
इसके दाम ज्यादा हैं।
आज के समाचार क्या हैं ?
आपका आशीर्वाद पाकर मैं धन्य हो गया हूँ ।

5 पुलिंग ईकारान्त, उकारान्त और ऊकारान्त शब्द दोनों वचनों में समान रहते है।

**जैसे** – एक मुनि, दस मुनि, एक डाकू, दस डाकू, एक आदमी, दस आदमी आदि।

6 बड़प्पन दिखाने के लिए कभी-कभी वक्ता अपने लिए 'मैं' के स्थान पर 'हम' का प्रयोग करता है।

**जैसे** – हम अंग्रेजों के जमाने के जेलर हैं।

मालिक ने नौकर से कहा कि हम मीटिंग में जा रहे हैं।

जब गुरूजी घर आये तो वे बहुत खुश थे।

हमे याद नहीं हमने कभी आपसे ऐसा कहा था।

**व्यवहार में 'तुम' के स्थान पर 'आप' का प्रयोग करना अच्छा माना जाता है।**

**जैसे** – आप कहाँ पर गये थे।

आप आइयेगा जरूर, हमें आपकी प्रतीक्षा रहेगी।

8 जातिवाचक संज्ञा का प्रयोग दोनों वचनों में किया जाता है।

**जैसे** – कुत्ता भौंक रहा है।, कुत्ते भौंक रहे हैं।, शेर जंगल का राजा है।, बैल के चार पाँव होते है।

9 परन्तु धातुओं का बोध कराने वाली जातिवाचक संज्ञायें एकवचन में ही प्रयुक्त होती है।

**जैसे** – सोना बहुत महँगा है।, चाँदी सस्ती है।, उसके पास बहुत धन है।

10 गुण वाचक और भाववाचक दोनों संज्ञाओं का प्रयोग एकवचन और बहुवचन दोनों में ही किया जाता है।

जैसे – मैं उनके धोखे से ग्रस्त हूँ।, इन दवाईयों की अनेक खूबियाँ हैं। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की सज्जनता पर सभी मोहित थे।, मैं आपकी विविशता को जानता हूँ।

**एकवचन से बहुवचन बनाने के नियम**

1 आकारान्त पुलिंग शब्दों में 'आ' के स्थान पर 'ए' लगाने से –

जूता –जूते, तारा – तारे, लड़का-लड़के, घोड़ा-घोड़े, बेटा-बेटे, कपड़ा-कपड़े, बालिका-बालिकाएं

2 आकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों में 'अ' के स्थान पर 'ए' लगाने से –

कलम-कलमें, बात–बातें, आँख-आँखे, रात-रातें, सड़क-सड़कें, चप्पल – चप्पलें, पुस्तक – पुस्तके



3 जिन स्त्रीलिंग संज्ञाओं के अन्त में 'या' आता है, उनमें 'या' के ऊपर 'चन्द्रबिन्दु' लगाने से बहुवचन बनता है –

बिंदिया-बिंदियाँ, चिडिया-चिडियाँ, डिबिया-डिबियाँ, गुडिया-गुडियाँ, चुहिया-चुहियाँ

4 ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के 'इ' या 'ई' के स्थान पर 'इयाँ' लगाने से –

तिथि-तिथियाँ, नारी-नारीयाँ, गति-गतियाँ, थाली-थालीयाँ

5 आकारान्त स्त्रीलिंग एकवचन संज्ञा-शब्दों के अन्त में 'एँ' लगाने से बहुवचन बनता है –

अध्यापिका-अध्यापिकाएँ, कन्या-कन्याएँ, माता माताएँ, भूजा भुजाएँ, पत्रिका-पत्रिकाएँ

6 इकारांत स्त्रीलींग शब्दों में 'याँ' लगाने से –

जाति-जातियाँ, रीति-रीतियाँ, नदी-नदियाँ, लड़की लड़कियाँ

7उकारान्त व ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के अन्त में 'एँ' लगाते है। 'ऊ' को 'उ' में बदल देते है।

वस्तु-वस्तुएँ, गौ-गौएँ, वधू-वधुए, गऊ-गउएँ।

8 संज्ञा के पुंलिंग अथवा स्त्रिलिंग रूपों में गण, वर्ग, जन, लोग, वृन्द, दल आदि शब्द जोड़कर भी शब्दों का बहुवचन बना देते हैं।

पाठक-पाठकगण, श्रोता-श्रोताजन, मित्र-मित्रवर्ग, सेना-सेनादल, गुरू-गुरूजन, गरीब-गरीबलोग

**प्रश्न** - हिन्दी भाषा में वचन के कितने भेद हैं।

एक, दो, तीन, चार

**काल**

**काल की परिभाषा** – क्रिया के उस रूपान्तर को 'काल' कहते है, जिसके उसके कार्य:व्यापार का समय और उसकी पूर्ण अथवा अपूर्ण अवस्था का बोध हो।

**काल के भेद**

काल के **तीन** भेद हैं – वर्तमानकाल, भूतकाल, भविष्यत्काल

**1.वर्तमान कालः**

परिभाषाः क्रियाओं के व्यापार की निरन्तरता को 'वर्तमान काल' कहा जाता है। इसमें क्रिया का आरम्भ हो चुका होता है।

जो समय चल रहा है उसे 'वर्तमान काल' कहाँ जाता है।

**जैसेः** वह खा रहा है।

वर्तमान काल के **पाँच भेद** हैं। इन प्रकारों का परिचय निम्नलिखित हैः

**1.सामान्य वर्तमान कालः** क्रिया के जिस रूप से क्रिया के वर्तमान काल में सामान्य रूप से संपन्न होने का बोध होता है, उसे 'सामान्य वर्तमान काल' कहा जाता है। अर्थात सामान्य वर्तमान से यह ज्ञान होता है कि क्रिया का प्रारंभ बोलने के समय हुआ है।

**जैसेः** हवा चलती है। लड़का पुस्तक पढ़ता है।

**2.तात्कालिक वर्तमान कालः** तात्कालिक वर्तमान से यह ज्ञात होता है कि वर्तामानकाल में क्रिया हो रही है। अर्थात् बोलते समय क्रिया का व्यापार जारी है या चल रहा है। अत: इस क्रिया से इसकी पूर्णता का ज्ञान नहीं होता। इसलिए 'तात्कालिक वर्तमान काल' को अपुर्ण वर्तमान के नाम से भी जाना जाता है।

**जैसे –** गाड़ी आ रही है।, हम कपड़े पहन रहे हैं।, पत्र भेजा जा रहा है।

**3 पूर्ण वर्तमान काल –** 'पूर्ण वर्तमान काल' में कार्य की पूर्ण सिद्धि का बोध होता है।

**जैसे :** वह आया है।, लड़के ने पुस्तक पढ़ी है।

**4 संदिग्ध वर्तमान काल –** जिससे क्रिया के संपन्न होने में तो संदेह प्रकट हो, परंतु उसकी वर्तमानता में कोई संदेह नहीं हो। उसे 'संदिग्ध वर्तमान' काल कहते हैं।

**जैसे –** गाड़ी आती होगी।, वह खाता होगा।

**5 संभाव्य वर्तमान काल –** संभाव्य वर्तमान में क्रिया के वर्तमानकाल में पूरा होने की संभावना रहती है। संभाव्य का अर्थ है संभाव्य का अर्थ है संभावित अर्थात, जिसके होने की संभावना या अनुमान हो। संभाव्य 'वर्तमान काल' कहते है।

**जैसे** : वह चलता हो, वह आया हो, उसने खाया हो।

**भूतकाल**

**परिभाषा –** क्रिया के जिस रूप से कार्य की समाप्ति का ज्ञान हो, उसे 'भूतकाल' की क्रिया कहते हैं।

जो समय बीत चुका है उसे 'भूतकाल' कहते है।

**जैसे –** वह आया था, वह खा चुका था, वह जा चुका था।

**भूतकाल के भेद –** छह हैं।

1 सामान्य भूतकाल 2 आसन्न भूतकाल 3 पूर्ण भूतकाल 4 अपूर्ण भूतकाल 5 सन्दिग्ध भूतकाल 6 हेतूहेतुमद भूतकाल

**1 सामान्य भूतकाल –** भूतकाल की जिस क्रिया से विशेष समय का बोध नहीं हो, से 'सामान्य भूतकाल' की क्रिया कहते हैं। सामान्य भूतकाल की क्रिया से यह पता चलता है कि क्रिया का व्यापार बोलने या लिखने के पहले हुआ।

**जैसे –** गाड़ी आयी , पत्र भेजा गया।

2 आसन्न भूतकाल – क्रिया के जिस रूप से कार्य : व्यापार की समाप्ति निकट भूतकाल में या तत्काल ही उसके होने का भाव सूचित होता है, उसे 'आसन्न भूतकाल' की क्रिया कहते हैं।

**जैसे –** मैंने पढ़ा है। उसने दवा खायी है। मैंने आम खाया है।

3 पूर्ण भूतकाल – पूर्ण भूतकाल से ज्ञात होता है कि क्रिया के व्यापार को पूर्ण हुए काफी समय बीत चुका है। इसमें क्रिया की समाप्ति के समय का स्पष्ट ज्ञान होता है।

जैस – नौकर पत्र लाया था।

4 अपूर्ण भूत – अपूर्ण भूतकाल से यह ज्ञात होता है कि क्रिया भूतकाल में हो रही थी, उसका व्यापार पूरा नहीं हुआ था, लेकिन जारी था।

जैसे – नौकर जा रहा था। गाड़ी आ रही थी।

5 संदिग्ध भूतकाल – संदिग्ध भूतकाल में यह संदेह बना रहता है कि भूतकाल में क्रिया समाप्त हुई या नहीं।

जैसे – उसने खाया होगा, तुमने गाया होगा, आपने किताब पढ़ा होगा।

6 – हेतुहेतुमद् भूतकाल – हेतुहेतुमद् भूतकाल से यह ज्ञात होता है कि क्रिया भूतकाल में होने वाली थी, परन्तु किसी कारण से नहीं हो सकी।

जैसे – तू आता, वह जाता, वह आता तो मैं जाता।

**भविष्यत्काल** – भविष्य में होनेवाली क्रिया को भविष्यत्काल की क्रिया कहते हैं।

जो समय आने वाला है उसे 'भविष्यत्काल' कहते हैं।

**जैसे** – वह कल घर जाएगा। रमेश कल पढ़ेगा।

भविष्यत्काल के भेद – तीन हैं।

**1 सामान्य भविष्य : सामान्य भविष्य काल से यह ज्ञात होता है कि क्रिया सामान्यत: भविष्य में संपन्न होगी।**

**जैसे – मैं घर जाऊँगा। वह पढ़ेगा। वह जाएगा।**

**2 संभाव्य भविष्य** – इसमें भविष्य में होनेवाली एक क्रिया के होने पर निर्भर रहती है।

**जैसे – वह विजयी होगा , मैं कल जा सकता हूँ।**

**3 हेतुहेतुमद् भविष्य** – इसमें भविष्य में होनेवाली एक क्रिया दूसरी क्रिया होने पर निर्भर रहती है।

जैसे – वह पढ़े तो सफल हो। जो कमाये सो खाये।

काल के कितने भेद है ?

एक, दो, तीन, चार

## कारक

**कारक की परिभाषा**

- संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से वाक्य के अन्य शब्दों के साथ उनका सम्बन्ध सूचित होता हो, उसे 'कारक' कहते हैं।
- संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से उनका (संज्ञा या सर्वनाम का) क्रिया का सम्बन्ध सूचित हो, उसे उस रूप को 'कारक' कहते हैं।



- 'कारक' का अर्थ होता है किसी कार्य को करने वाला। अर्थ जो भी क्रिया को करने में भूमिका निभाता है, वह 'कारक' कहलाता है।
- दूसरे शब्दों में संज्ञा अथवा सर्वनाम को क्रिया से जोडने वाला चिन्ह अथवा परसर्ग ही 'कारक' कहलाते हैं।

(**कारक का शब्दिक अर्थ** – क्रिया का निष्पादक, क्रिया का जनक )

उपरोक्त परिभाषाओं का अर्थ यह हुआ कि संज्ञा या सर्वनाम के आगे जब 'ने' 'को' 'से' आदि विभक्तियाँ लगती हैं। तब उनका रूप 'कारक' कहलाता है। तभी वे वाक्य के अन्य शब्दों से सम्बन्ध रखने योग्य 'पद' होते हैं और 'पद' की अवस्था में ही वे वाक्य के दूसरे शब्दों से या क्रिया से कोई लगाव रख पाते हैं। 'ने', 'को', 'से' आदि विभिन्न विभिक्तियाँ विभिन्न कारकों की हैं। उनके लगने पर ही कोई शब्द 'कारकपद' बन पाता है और वाक्य में आने योग्य होता है। 'कारकपद' या 'क्रियापद' बने बिना कोई शब्द 'वाक्य' में बैठने योग्य नहीं होता।

**उदाहरण** - पिता जी **ने** खेत में बैलों **से** हल चलाया।

**कारक के भेद -**

हिन्दी में कारक आठ हैं और कारकों के बोध के लिए संज्ञा या सर्वनाम के आगे जो प्रत्यय चिन्ह लगाये जाते हैं, उन्हें व्याकरण में विभिक्तियाँ कहते हैं। कुछ लोग इन्हें 'परसर्ग' भी कहते हैं। विभिक्त से बने शब्दरूप को विभक्त्यन्त 'शब्द' या 'पद' कहते हैं। हिन्दी कारकों की विभक्तियों के चिन्ह इस प्रकार हैं।

**कारक परसर्ग की तालिका**

| विभक्ति | कारक | परसर्ग चिन्ह |
|---|---|---|
| प्रथमा | कर्ता | ने |
| द्वितीया | कर्म | को |
| तृतीया | करण | सेद्वारा |
| चतुर्थ | सम्प्रदान | के, लिए, को |
| पंचमी | अपादान | से (अलग) |
| षष्ठी | संबंध | का की के रा री रे, ना, नी, ने |
| सप्तमी | अधिकरण | में, पे, पर |
| सम्बोधन | सम्बोधन | हे, अजी, ओ, ओए, ए |

कर्ता ने क्रम को करण से सम्प्रदान के,को,की अपादान से संबंध का की के अधिकरण में, पें, पर सम्बोधन किया।

**1 कर्ता कारकः**

**परिभाषा -**

संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप क्रिया करने वाले का बोध होता है, उसे 'कर्ता कारक' कहते हैं।

सरल शब्दों में क्रिया करने वाले को 'कर्ता' कहते हैं।

कर्ता कारक का चिन्ह है - **ने**

**उदाहरण -** मोहन खाता है।

इस वाक्य में खाने का काम '**मोहन**' करता है अत: '**कर्ता**' मोहन है। वाक्य में कर्ता का प्रयोग दो रूपों में होता है – पहला वह, जिसमें 'ने' विभक्ति नहीं लगती, अर्थात जिसमें क्रिया के लिंग, वचन और पुरूष कर्ता के अनुसार होते हैं। इसे **'अप्रत्यय कर्ताकारक'** कहते हैं। इसे 'प्रधान कर्ताकारक' भी कहा जाता है। **उदाहरणार्थ** – 'मोहन खाता है'। यहाँ खाता है क्रिया है, जो कर्ता 'मोहन' के लिंग, वचन के अनुसार है, इसके विपरित जहाँ क्रिया के लिंग, वचन और पुरूष कर्ता के अनुसार न होकर कर्म के अनुसार होते हैं।



वहाँ 'ने' विभक्ति लगती है। इसे व्याकरण में **'सप्रत्यय कर्ताकारक'** कहते हैं। इसे 'अप्रधान कर्ताकारक' भी कहा जाता हैं।

**उदाहरणार्थ** – 'श्याम ने मिठाई खाई'। इस वाक्य में क्रिया 'खाई' कर्म ' मिठाई' के अनुसार आयी है।

कर्ता कारक की विभक्ति 'ने' है। बिना विभक्ति के भी कर्ताकारक का प्रयोग होता है। 'अप्रत्यय कर्ताकारक' में 'ने' का प्रयोग न होने के कारण वाक्य रचना में कोई खास कठिनाई नहीं होती।

**'ने' का प्रयोग**

'ने' का प्रयोग 'कर्ता' के साथ तभी होता है, जब क्रिया सकर्मक तथा सामान्यभूत, आसन्नभूत, पूर्णभूत, हेतुमद्भूत और सन्दिग्ध भूतकालों की और कर्तवाच्य की हो।

**उदाहरणः**

**सामान्यभूत -** श्याम ने रोटी खायी। **आसन्नभूत -** श्याम ने रोटी खायी है।

**पूर्णभूत** – श्याम ने रोटी खायी थी।

**सन्दिग्धभूत** – श्याम ने रोटी खायी होगी। **हेतुहेतुमद्भूत** – श्याम ने पुस्तक पढ़ी होती, तो उत्तर ठीक होता।

**2 कर्मकारकः**

**परिभाषाः**

जिस शब्द पर क्रिया का फल/प्रभाव जिस संज्ञा या सर्वनाम पर पड़ता है। उसे 'कर्म कारक' कहते है।

जिस वाक्य में क्रिया का फल जिस शब्द (संज्ञा/सर्वनाम) पर पड़ता है, उसे ' कर्म' कहते हैं।

कर्म कारक का चिन्ह है - **'को'**

'कर्म कारक' पहचान जिस वाक्य में क्रिया के साथ क्या, किसे लगाकर देखिए जो उत्तर मिलेगा वह 'कर्म' होगा।

**उदाहरणः**

मां बच्चे को खाना खिला रहीं है।

**'कर्म' दो प्रकार के होते है –** निर्जीव कर्म, सजीव कर्म

**निर्जीव कर्म -** 'निर्जीव कर्म' के साथ 'को' कारक चिन्ह का प्रयोग नहीं करते । जैसे - नेहा पुस्तक पढ़ रही है । **सजीव कर्म -** 'सजीव कर्म' के साथ 'को' कारक चिन्ह प्रयोग किया जाता है । **जैसे –** मैंने सुरेश को चाय पिलाई थी ।

**पहचान –** यदि क्रिया के साथ 'क्या' से प्रश्न करें और उत्तर मिले तो वह ' निर्जीव कर्म' होता है और किसी शब्द के स्थान पर किसे, किसको से उत्तर मिले तो वह 'सजीव कर्म' होता है ।

**कर्म कारक के नियम**

1 ओर चारों ओर, पास है । दूर के योग में कर्म कारक प्रयुक्त होता है ।

**जैसे -** विद्यालय के चारों ओर पानी है ।, कोचिंग के चारों ओर सड़क है ।

2 दिन, समय और तिथि प्रकट करने के लिए 'को' का प्रयोग होता है ।

**जैसे -** श्याम सोमवार को कोलकत्ता जाएगा ।, 26 जनवरी को दिल्ली चलेंगे । रविवार को विद्यालय बन्द रहेगा ।

3 विशेषण का प्रयोग संज्ञा के रूप में कर्म कारक की भाँति होता है, तब उसके साथ 'को' का प्रयोग होता है ।

**जैसे –** बुरों को कोई नहीं चाहता ।, भूखों को भोजन कराओ ।

**3 करणकारकः**

**करणकारक की परिभाषाः**

- वाक्य में जिस शब्द से क्रिया के सम्बन्ध का बोध हो, उसे 'करण कारक' कहते हैं । करण कारक के सबसे अधिक प्रत्यय चिन्ह है ।
- संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप की सहायता से क्रिया सम्पन्न होती हैं, उसे ' करण कारक' कहते हैं । **अथवा** वाक्य में कर्ता जिस माद्यम या सादान से क्रिया करता है, उसे 'करण कारक' कहते है । कर्म कारक का चिन्ह है - **'से' ' के द्वारा'**

**उदाहरण -** वह कलम से पत्र लिखता है ।, मैं मोटर साइकल से आता हूँ ।

**करण कारक के नियमः**



1 – जिस चिन्ह 'से' किसी वस्तु, व्यक्ति या स्थान की पहचान हो उसमें ' करण कारक' होता हैं ।

**जैसे -** वह जटाओं से तपस्वी लाता है ।, आप वस्त्रों से अध्यापक प्रतीत होते हैं ।

2 - साथ अर्थ के योग में 'करण कारक' होता है ।

**जैसे -** मित्र के साथ पाठाशाला गया ।, राजेश के साथ सुरेश बाजार गया ।

3 जिस अंग में विकार हो, वहाँ 'करण कारक' होता है ।

**जैसे -** वह पैर से लँगड़ा है ।, वह सिर से गंजा है ।

4 समानता चलाने में 'करण कारक' होता है ।

**जैसे -** अनीता सुनीत के समान सुन्दर है ।

5 कभी-कभी करण कारक में परसर्ग का लोप हो जाता है ।

जैसे - आँखो देखी घटना पर कौन विश्वास नहीं करेगा ? कानों सुनी बात पर विश्वास नहीं करना चाहिए ।

**4 सम्प्रदान कारकः**

**सम्प्रदान की परिभाषाः**

जिसके लिए कुछ किया जाय या जिसको कुछ दिया जाय, इसका बोध कराने वाले शब्द के रूप को 'सम्प्रदान कारक' कहते हैं ।

कर्म कारक का चिन्ह है - **'को'**

**जैसे – बच्चों को मिठाईया जगह पढ़ने के लिए किताबें दिए ।**

**कर्म कारक के नियम**

1 'कर्म' और 'सम्प्रदान' का एक ही विभक्तिप्रत्यय है 'को' पर दोनों के अर्थों में अन्तर है । सम्प्रदान का 'को' 'के लिए' अव्यय के स्थान पर या उसके अर्थ में प्रयुक्त होता है, जबकि कर्म के 'को' का 'के लिए' अर्थ से कोई सम्बन्ध नहीं है । नीचे लिखे वाक्यों पर ध्यान दीजिए – **उदाहरण**

**कर्म –** हरि मोहन को मारता है । **सम्प्रदान –** हरि मोहन को रूपये देता है ।

**कर्म –** उसके लड़के को बुलाया । **सम्प्रदान -** उसने लड़के को मिठाईयाँ दीं ।

**कर्म –** माँ ने बच्चे को खेलते देखा। **सम्प्रदान –** माँ ने बच्चे को खिलौने खरीदे।

2 साधारणत: जिसे कुछ दिया जाता है या जिसके लिए कोई काम किया जाता है, वह पद 'सम्प्रदान कारक' का होता है।

**जैसे -** भूखों को अन्न देना चाहिए और प्यासों को जल। गुरू शिष्य को ज्ञान देता है।

3 'के' हित, 'के वास्ते', 'के निमत्त' आदि प्रत्यय वाले अव्यय भी 'सम्प्रदान' कारक के प्रत्यय हैं।

**जैसे –** राम के हित के लिए लक्ष्मण वन गये थे।, तुलसी के वास्ते ही जैसे राम ने अवतार लिया।, मनुष्य के निमित्त ही ईश्वर की कोई कृपा नहीं।

**5 अपदान कारकः**

**अपदान कारक की परिभाषाः**

संज्ञा के जिस रूप से किसी वस्तु के अलग होने का भाव प्रकट होता है, उसे ' अपादान कारक' कहते है।

जिस शब्द में अपादान की विभक्ति लगती है, उससे किसी दूसरी वस्तु के पृथक होने का बोध होता है –

अपदान कारक का चिन्ह है - **'से'**

**उदाहरण -** हिमालय **से** गंगा निकलती है। वह घर **से** बाहर आया। मोहन ने घड़े **से** पानी ढाला।

करण और अपादान के 'से' प्रत्यय में अर्थ का अन्तर करणकारक के प्रसंग में बताया जा चुका है।

**6 संबध कारकः**

**संबध कारक की परिभाषाः**

संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से किसी वस्तु या व्यक्ति से संबंध प्रकट हो, उसे 'संबंध कारक' कहते है। संबंध कारक के चिन्ह का की के रा री रे, ना, नी, ने।

संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से किसी अन्य शब्द के साथ सम्बन्ध या लगाव प्रतीत हो, उसे 'सम्बन्ध कारक' कहते हैं।



संबध कारक का चिन्ह है - **का, की, के, रा, री, रे, ना, नी, ने।**

**उदाहरणः**

सौरभ **की** बहन सुचेता जयपुर पढ़ती है।
यह सुरेश **का** घर है।
आपकी चांदी **की** थाली देना
शालू **के** खिलौने बहुत सुन्दर हैं।
यह मे**री** पुस्तक है।

**7 अधिकरण कारकः**

**अधिकरण कारक की परिभाषाः**

क्रिया या आधार को सुचित करने वाली संज्ञा या सर्वनाम के स्वरूप को अधिकरण कारक कहते हैं।

संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप किसी वस्तु या व्यक्ति के आधार का बोध हो, उसे अधिकरण कारक कहते हैं। अर्थात् क्रिया होने के स्थान और काल को बताने वाला कारक अधिकरण कारक कहलाता है।

**अधिकरण कारक के चिन्ह –** मैं, पे,पर,के ऊपर, के बीच, के अन्दर, के भीतर आदि।

**उदाहरण -**

मेरी परिक्षा मई **में** होगी।
**मैं** कमरे में बैठा हूँ।
मैं छत **पर** खड़ा हूँ।
पेड़ **के ऊपर** पक्षी बैठे हैं।
आंगन **के बीच** चारपाई बिछा दो।
नदी **के अन्दर** बहुत मछिलियाँ हैं।
जमीन **के भीतर** खनिज है।

**8 सम्बोधन कारकः**

**सम्बोधन कारक की परिभाषाः**

संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप स किसी को पुकारा जाये, उसे 'सम्बोधन कारक' कहते हैं।

**सम्बोधन कारक के चिन्ह –** हे, ओ, अरे, ए, अये, ओए आदि।

**उदाहरणः**

**हे** भगवान ! मुझे इस संकट से बाहर निकाल दे ।

**बच्चों** ! घर जाओं

**ओ** राधा ! जरा इधर तो आना ।

**हे** मूर्ख ! शान्त हो जा ।

**अरे** इधर आओ ।

कारक के कितने भेद है ।

सात, आठ, पाँच, चार

**'प्रत्यय'**

'प्रत्यय' दो शब्दों से बना है – प्रति+अय । 'प्रति' का अर्थ 'साथ में', 'पर बाद में' है और 'अय' का अर्थ 'चलनेवाला' या लगनेवाला' । प्रत्यय उपसर्गों की तरह अविकारी शब्दांश है, जो शब्दों के बाद जोड़े जाते हैं । जैसे – 'भला' शब्द में 'आई' प्रत्यय लगाने से 'भलाई' शब्द बनता है । यहाँ प्रत्यय 'आई' है ।

**प्रत्यय की परिभाषा -** शब्दों के बाद जो अक्षर या अक्षरसमूह लगाया जाता है, उसे 'प्रत्यय' कहते हैं ।

**प्रत्येय के भेद**

**मूलत प्रत्यय के दो प्रकार हैः 1.कृत् 2.तद्धित**

**1 कृदन्तः**

क्रिया या धातु के अन्त में प्रयुक्त होनेवाले प्रत्ययों को 'कृत् प्रत्यय' कहते हैं और उनके मेल से बने शब्द को 'कृदन्त' कहते हैं । ये प्रत्यय क्रिया या धातु को नया रूप देते हैं । इनसे संज्ञा और विशेषण बनते हैं । यहाँ द्रष्टव्य यह है कि हिन्दी में क्रियाओं के अन्त का 'ना' हटा देने पर जो अंश रह जाता है, वही धातु है **– जैसे -** कहना की कह्, चलना का चल् धातु में ही प्रत्यय लगते हैं ।

कुछ उदाहरण इस प्रकार हैः

| **कृत-प्रत्यय** | **क्रिया** | **शब्द** |
|---|---|---|
| वाला | गाना | गानेवाला |
| हार | होना | होनहार |
| अक | कृ | कारक |
| ति | शक् | शक्ति |
| तव्य | कृ | कर्तव्य |



**'उपसर्ग'**

'उपसर्ग' शब्द (उप+सर्ग) के योग से बनता है । 'उप' का अर्थ 'समीप', 'निकट ' या 'पास' होता है । 'सर्ग' का अर्थ है 'सृष्टि करना' । 'उपसर्ग' का अर्थ है – पास में बैठकर दूसरा नया अर्थवाला शब्द बनाना । जैसे – 'हार' शब्द के आगे 'प्र' उपसर्ग लगाने पर एक नया शब्द 'प्रहार' बन गया, जिसका नया अर्थ हुआ 'मारना' ।

**उपसर्ग शब्द की परिभाषाः**

**उपसर्ग** उस शब्दांश या अव्यय को कहते हैं, जो किसी शब्द के पहले आकर उसका विशेष अर्थ प्रकट करता है ।

जो शब्दांश मूल शब्द के पहले जुड़कर उसके अर्थ में परिवर्तन कर देते हैं, अथवा विशेषता उत्पन्न कर देते हैं, उन्हें उपसर्ग कहते हैं ।

**जैसेःउप + कार = उपकार**

'उप' का अर्थ निकटता और 'उपकार' का भलाई, सहायता ।

**अभि + नेता = अभिनेता**

'अभि' का अर्थ होता है इच्छा प्रकट करना, समीप्य ।

अभिनेता का अर्थ होता है । जो रंगमंच पर नाटक में अभिनय करता हो ।

**कुछ उदाहरणः**

**अति** = अधिकः अतिकाल, अतिरिक्त, अतिशय, अतिव्याप्ति, अतिक्रमण ।

**अधि** = श्रेष्ठः अधिकरण, अधिकार, अधिराज, अध्यात्म, अध्यक्ष, अधिपति ।

**अनु** = क्रमः अनुशासन, अनुकरण, अनुवाद, अनुचर, अनुज, अनुक्रम, अनुपात, अनुकूल ।

**नि** = भीतरः नीचे, निदर्शन, निकृष्ट, निपात, नियुक्त, निवास, निषेध ।

## नाटक के तत्व

भारत में 'नाटक' साहित्य की एक ऐसी विधा है, जिसकी लम्बी परम्परा पायी जाती है। भारत में ही 'नाट्यशास्त्र' की रचना सबसे पहले हुई। यहाँ नाट्यशास्त्र के अनेक आचार्य हुए, जिन्होंने नाटक पर बड़े विस्तार और गम्भीरता से इस विधा पर विचार किया है। इनमें भरत, धनंजय, रामचन्द्र-गुणचन्द्र, अभिनवगुप्त, विश्वनाथ आदि के नाम अदिक प्रसिद्ध हैं।

'नाटक' अथवा 'दृश्य काव्य' साहित्य की अत्यंत प्राचीन विधा है। संस्कृत साहित्य में इसे 'रूपक' नाम भी दिया गया है। नाटक का अर्थ है 'नट'। कार्य अनवीकरण में कुशल व्यक्ति संबंध रखने के कारण ही विधा में नाटक कहलाते हैं।

**परिभाषा –** आचार्य धनंजय ने नाटक की परिभाषा इस प्रकार बतायी है – अवस्था की अनुकृति नाटक है। यह परिभाषा सार्थक, व्यावहारिक और उपयोगी है। नाटक में अनुकरण तत्त्व की प्रधानता है। साहित्य की सभी विधाओं में नाटक ही वह विधा है, जिसमें अनुकरण पर सर्वाधिक बल दिया गया है। यह अनुकरण किसका होता है ? उत्तर है – कार्य अर्थात् मानवीय जीवन के क्रियाशील कार्यों का। मनुष्य अनेक परिस्थितियों से हर क्षण गुजरता है। उसकी विभिन्न अवस्थाएँ होती हैं। भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में रहने के कारण उसके जीवन-रंगमंच पर अनेक दृश्य (स्थितियाँ) आते–जाते रहते हैं। नाटककार नाटक की रचना करते समय इन्हीं स्थितियों का अनुकरण करता है।

**स्वरूप –** नाटक में जीवन का यथार्थमूलक अनुकरण होते हुए भी नाटककार सर्जनात्मक कल्पना करता है। यही कल्पना नाटक को साहित्य की विधा प्रदान करती है। इसलिए नाटक एक ऐसी कला है, जिसमें अनुकरण और कल्पना दोनों का योग रहता है। इसका उद्देश्य पहले शिक्षण और मनोरंजन था। अब इसका लक्ष्य जीवन की विविध समस्याओं का उद् घाटन करना और मानवीय संवेदनाओं को प्रकाश में लाना है। यही कारण है कि प्राचीन काल के नाटकों से आज के नाटक बिलकुल भिन्न हो गये हैं।



**नाटक के तत्व –** भारतीय दृष्टि से नाटक के तीन तत्व माने गये हैं – **वस्तु, नेता** और **रस**। **वस्तु** नाटक की **कथा** को कहते हैं, जिसके दो प्रकार होते हैं – **आधिकारिक कथा और प्रांसगिक कथा**। आधिकारिक कथा वह है, जो नाटक में आरम्भ से अन्त तक पाई जाती है और प्रासंगिक कथाएँ लघु होती हैं, जो नाटकीय कथावस्तु की धारा में कुछ दूर चलकर समाप्त हो जाती हैं। प्राचीन काल के नाटकों की कथा दुहरी होती थी – आधिकारिक और प्रासंगिक। दोनों प्रकार की कथावस्तुओं का उपयोग होता था। आज के नाटकों की कथावस्तु इकहरी होती है, अर्थात केवल आधिकारिक कथा का प्रयोग होता है। आज नाटक आदर्शवादी से अधिक यथार्थवादी हो गये हैं, ऐतिहासिक-पौराणिक से अधिक सामाजिक–राजनितिक हो गये हैं।

**नेता** चरित्र को कहते हैं। यह नाटक की कथावस्तु का नेतृत्व करता है, इसे नायक कहते हैं। लेकिन 'नेता' में नाटक के सभी प्रकार के चरित्र का समावेश होता है। नायक, नायिका, विदूषक, प्रतिनायक, लघु चरित्र इत्यादि। नाटकशास्त्र के अनुसार नायक को सर्वगुणसंपन्न होना चाहिए। नायिका को भी उसी के अनुरूप होना चाहिए। प्राचीन नाटकों के अन्त में नायक-नायिका की विजय और प्रतिनायक की पराजय दिखायी जाती थी। इस प्रकार के नाटक को सुखान्त नाटक कहते हैं। किन्तु, आज दु:खान्त नाटक भी लिखे जा रहे हैं, जिनमें नायक-नायिका का दु:खद अन्त या उनकी मृत्यु भी हो जाती है।

**रस -** यह काव्य और नाटक दोनों की **आत्मा** है। प्राचीन दृष्टि से नाटक में श्रंगार, करूण और वीर - तीन रसों में से कोई एक प्रधान हो, ऐसी व्यवस्था है। नाटक के अन्त में सत्य की जीत होती थी, इसलिए दर्शकों को आनंद की प्राप्ति होती थी। वास्तव में, रस नाटक के अन्त में सारभूत प्रभाव होता था। आज इसकी आवश्यकता नहीं समझी जाती।

**संवाद –** नाटक में नाटकार के पास अपनी और से कहने का अवकाश नहीं रहता। वह संवादों द्वारा ही वस्तु का उद्घाटन तथा पात्रों के चरित्र का विकास करता है। अतः इसके संवाद सरल, सुबोध, स्वभाविक तथा पात्र अनुकूल होने चाहिए। गंभीर दार्शनिक विषयों से इसकी अनुभूति में बाधा

होती है । इसलिए इनका प्रयोग नहीं करना चाहिए । नीर सत्ता के निरावरण तथा पात्रों की मनोभावों की मनोकामना के लिए कभी-कभी स्वागत कथन तथा गीतों की योजना भी आवश्यक समझी गई है ।

**रंगमंच -** नाटक का रंगमंच से सीधा सम्बन्ध माना जाता है । इसलिए, नाटक को दृश्यकाव्य कहते हैं, अर्थात् जो देखा जाय । नाटक की रचना तभी सफल होती है, जब वह रंगमंच पर सफलतापूर्वक अभिनीत किया जता है । साहित्य की अन्य विधाओं में रंगमंच या अभिनय की अनिवार्यता आवश्यक नहीं मानी जाती । सभी प्रकार के अभिनयों में सात्विक अभिनय को सर्वश्रेष्ठ माना गया है ।

**उद्देश्य –** सामाजिक के ह्रदय में रक्त का संचार करना ही नाटक का उद्देश्य होता है । नाटक के अन्य तत्व इस उद्देश्य के साधन मात्र होते हैं । भारतीय दृष्टिकोण सदा आशावादी रहा है इसलिए संस्कृत के प्रायः सभी नाटक सुखांत रहे हैं । पश्चिम नाटककारों ने या साहित्यकारों ने साहित्य को जीवन की व्याख्या मानते हुए उसके प्रति यथार्थ दृष्टिकोण अपनाया है उसके प्रभाव से हमारे यहां भी कई नाटक दुखांत में लिखे गए हैं, किंतु सत्य है कि उदास पात्रों के दुखांत अंत से मन खिन्न हो जाता है ।

**भाषा -** नाटक की भाषा सामान्यत: सरल, सुबोध और व्यावहारिक होनी चाहिए । इसकी भाषा कविता की भाषा नहीं होनी चाहिए । यह पात्रानुकूल हो और देश-काल के अनुरूप हो ।

साहित्य की सभी विधाओं में नाटक सबसे अधिक लोकप्रिय है, क्योंकि नाटक के दृश्यों को देखकर दर्शकों को जो आनन्द मिलता है, वह कविता या उपन्यास पढ़कर नहीं मिलता । सामाजिकों के मन पर इसका सीधा प्रभाव पड़ता है । इसलिए इसकी सार्वाधिक महत्ता है ।



**उपन्यास के तत्व**

भारतीय जीवन में कथा-साहित्य का महत्वपुर्ण स्थान है । उपन्यास साहित्य जिस रूप में आज है वह पश्चिमी साहित्य की देन है । आधुनिक हिन्दी साहित्य में कथा-साहित्य के लिए 'उपन्यास' शब्द का एक विशिष्ट साहित्य रूप-स्वरूप के लिए प्रयोग होता है । 'उपन्यास' कथा साहित्य का सरल और स्वाभाविक रूप है । इसी कारण आज-कल इसका अधिक से अधिक विकास हो रहा है । भारत वर्ष में 'उपन्यास' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग संस्कृत के साहित्यचार्य 'भरतमुनी' के 'नाटय् शास्त्र' नामक ग्रन्थ में हुआ था । आज उपन्यास बहुत लोकप्रिय विधा है । इनके अन्तर्गत वास्तविक जीवन के प्रतिनिधित्व का दावा करने वाले पात्रों और कार्यों का चित्रण किया जाता है । हिन्दी में यह शब्द बंगाल से लिया गया है । बंगला में 'उप' शब्द अंग्रेजी के 'नोवेल' का समानार्थी है । इसका पहले प्रयोग करने वाले विद्वान का नाम 'भूदेव मुखर्जी' थें ।

**परिभाषा**

**राल्फ फार्क्स -** उपन्यास केवल कथात्मक गद्य नहीं हैं, यह मानव जीवन का गद्य है, यही पहली कला है, जिसने संपूर्ण मानव को अंगीकार किया और उसे अभिव्यक्त करने की चेष्टा की है ।

**फास -** उपन्यास यह गद्य आख्यान कहा जाता है, जो यथार्थ जीवन का यथार्थवादी दृष्टि से अध्ययन करें ।

**प्रेमचंद -** मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्र मात्र समजता हूँ । मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है ।

**श्यामसुन्दर दास -** उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है ।

**कथानक या कथावस्तु -** उपन्यास को विशिष्ट रूप और आकार देने में कथानक का विशेष योगदान रहता है । कथानक या कथावस्तु में मौलिकता, स्वाभाविकता, रोचकता, सम्बद्धता, संगठन आदि आवश्यक गुण होने चाहिए ।

**पात्र और चरित्र - चित्रण -** उपन्यास में कथानक का विकास पात्रों के माध्यम से होता हैं। विविध प्रकार की घटनाओं को पात्रों द्वारा ही प्रस्तुत किया जा सकता है। कोई भी घटना पात्रहीन नहीं हो सकती।

**संवाद-योजना -** उपन्यास में जितना महत्व कथा एवं पात्रों का है, उतना ही संवादो का है। संवादों के द्वारा पात्रों का चरित्रांकन प्रत्यक्ष रीति से होता है, लेखक को प्रत्यक्ष आना नहीं पड़ता। वह किसी पात्र की विशेषता या कमजोरी अन्य पात्रों की बातचीत से या टिप्पणी द्वारा व्यक्त करता है। यह सब संवाद द्वारा ही संभव है। संवादो का संबंध पात्रों के चरित्रचित्रण एवं कथावस्तु के विकास से है।

**देशकाल और वातावरण -** उपन्यास में वास्तविकता, सजीवता और गरिमा लाने के लिए अनुकूल वातावरण का होना आवश्यक है। देशकाल की परिस्थितियों, परंपराओं और जीवन पद्धतियों, वेशभुषा आदि का जितना अच्छा चित्रण उपन्यास में होगा, उतना ही अधिक प्रभावोत्पादकता आयेगी। वातावरण के लिए भौगोलिक सीमाओं का चित्रण भी आवश्यक है।

**भाषा -** भाषा भावों का वहन करती है। अर्थात् उपन्यासकार के मनोभावों को भाषा के माध्यम से मूर्तता प्राप्त होती है। भाषा सरल और सहज होनी चाहिए जिससे पाठकों की समझ में आये। भाषा तथा शैली वातावरण के अनुरूप होनी चाहिए।

**उद्देश्य -** कोई भी रचना निष्प्रयोजन या निरूद्देश्य नहीं होती। उसके सर्जन के पीछे सर्जक का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। यह उद्देश्य प्रत्यक्ष या परोक्ष दोनों हो सकते हैं।

**निंबध की तत्वे**

निबंध शब्द अंग्रेजी के ऐस्से (Essay) पर्यायवाची या समानार्थक शब्द के रूप में प्रचलित है। संस्कृत भाषा की व्युत्पत्ती के आधार पर विचार करे तो निबंध का एक अर्थ बांधना होता है। (नि + बंध + धत्र ) प्राचीन काल में रचनाएँ अधिकतर विशिष्ट प्रकार के पत्तो पर लिखी जाती थी जिसे ‘भोज पत्र’ कहा जाता था। इन्हीं भोजपत्रों को संवारकर बांधने की क्रिया को ‘ निबंध’ कहते थे। कालांतर में इसका अर्थ संकोच हुआ और उसका प्रयोग साहित्यिक कृतियों के लिए किया जाने लगा। निबंध के पर्यायवाची शब्दों के रूप में ‘लेख’, ‘रचना’ आदि शब्द की प्रचलित हुए।



पाश्चात विद्वानों ने निबंध के तत्वों को लेकर कही कुछ विशेष नियम या जटिल विधान का निर्माण नहीं किया। किन तत्वों को आधार माना जाये इस विषय पर अधिक बल नहीं दिया गया है। निबंध की प्रकृति पर ही उसकी विशेषताएँ आधारीत होती है। सर्व सामान्य तौर पर सभी समीक्षको ने निबंध के तात्त्विक सर्वेक्षण पर कुछ तत्व निर्धारित किए है। इसी आधार पर हम निबंध का त्तात्विक विवेचन नहीं कर सकते। निबंध आकार में छोटी गद्य रचना है। वह अभी इतना विस्तृत नही होता कि प्रबंध बन जाय। - परिभाषा, व्यक्तित्व का प्रकाशन, भावतत्त्व, बुद्धितत्त्व, संक्षिप्तता, कल्पनातत्त्व और उद्देश एवं शैली आदि हैं।

**परिभाषा - आ. रामचंद्र शुक्ल -** निबंध को गद्य की कसोटी है।

**बाबू गुलाब राय -** जिसमें एक सिमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छंदता, सौष्ठव और सजीवता के साथ ही आवश्यक संगीत और सुसंबद्धता के साथ किया गया हो।

'निबंध' वह गद्य रचना है, जो किसी विषय पर क्रमबद्ध रूप orderly से लिखी गई हो।‘निबंध’ वह लेख है जिसमें किसी गहन विषय पर विस्तृत और पांडित्यपूर्ण) जो विद्वता से भरा हुआ हो( विचार किया जाता है। ‘निबंध’ गद्य रचना को कहते हैं जिसमें किसी विषय का वर्णन किया गया हो

**व्यक्तित्त्व का प्रकाशन –** निबंध में निबंधकार अपने सहज स्वाभाविक – रूप से पाठक के सामने प्रकट होता है। वह पाठकों से मित्र की तरह खुलकर सहज संलाप करता है। यही कारण है कि मैदान की स्वच्छ हवा (बातचीत) में कुछ देर तक टहलने से चित्त को जिस तरह प्रसन्नता और उत्साह की प्राप्ति होती है। निबंध पढ़ने पर मन को वैसा ही आहाद होता है।

**भावतत्त्व -** भाव तत्त्वों को ही हृदय तत्त्व कहा जाता है। उत्कृष्ट निबंध के लिए यह तत्त्व आवश्य माना जाता है। यद्दपि इस तत्व की महत्ता भावात्मक निबंध में अधिक रहती हैं। इसके साथ-साथ वर्णनात्मक और विचारात्मक निबंधों मे भी पाया जाता है। इस तत्त्व के न रहने से भावात्मक निंबधों की रचना में कोई जान नहीं रहती। समाज के प्रति और अपने प्रति दृष्टिकोण का निर्णय के क्षणों में अभिव्यक्ति के लिए भाव तत्त्व का विशेष महत्व होता है।

**बुद्धितत्त्व -** निबंध साहित्य की एक ऐसी विधा है जिस में बुद्धि तत्त्व का महत्व सहसे आधिक है । वह इसलिए की निबंध में चाहे वह किसी भी वर्ग या प्रकार का हो, विचार या सोच वह महत्वपूर्ण होता है । प्राय: चिंतन प्रधान निबंधों में विषयो के लिए मानव जीवन के अंत कार्यो और व्यापारों की अनंत राशी खुली पड़ी है । निबंधकार चिंतन प्रधान निबंध में अपनी प्रवृत्ति और स्वभाव के अनुसार विचार और बुद्धित्तव का समन्वय पाठकों की बुद्धि को प्रेरित करता है ।

**कल्पना तत्व -** विचार और भावतत्व के साथ निंबध में कल्पना तत्त्व का भी आत्याधिक महत्व है । क्लपना पूर्व अनुभूतयोंकी पुनर्योजना से अपुर्वकी अनुभुती से अपनी रचना के लिए इसी के सहारे पर्याप्त सामग्री प्राप्त करता है । मनोव्यापार के स्तरों के अनुसार भिन्न भिन्न स्तरो पर कल्पना तत्त्व कार्य करता है । कल्पना का मुख्य कार्य है अप्रत्यक्षका-प्रत्यक्षीकरण या अनुभूत मनोवृतियों, भावों और विचार के मानसिक चित्र शब्दों के माध्यम से कराना । साहित्य के सभी विधाओं में कल्पना तत्त्व अनिवार्य है पर रचनाकार कहीं कम कहीं पर प्रचुर मात्रा में करता

**संक्षिप्तता –** निबंध जितना छोटा होता है अनुभूतियों उसमें उतनी ही सघन आती, जितना अधिक गठा होता है, कसाव के कारण तीव्रता रहती है । फलत-गठाव में निबन्ध का प्रभाव पाठक पर सर्वाधिक पड़ता है । निबंध की सफलता श्रेष्ठता उसकी संसक्षिप्तता है । शब्दों का व्यर्थ प्रयोग निबंध को निकृष्ट बनता है ।

**उद्देश -** निबंध में उद्देश का वही महत्व है जो साहित्य की अन्य विधाओ में है । किसी भी रचना का उद्देश उसके द्वारा सामाजिक यथार्थ स्थिति का चित्रण माना जाता है । जीवन के हर एक पहलु का चित्रण निबंध में होता हैं । उद्देश पूर्ण रचना ही समाज के लिए हितकारी होती है । निबंध युग जीवन और संपूर्ण समाज का यथार्थ चित्र ही निबंध का प्रथम उद्देश है । निबंध में जीवन दर्शन को भाव दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया जाता है । निबंध का मुख्य उद्देश्य ही कला की कैसोटी पर जीवन दृष्टि को परखना है ।

**शैली -** शैली निबंध के तत्त्वों में महत्वपूर्ण है । जिसके कई प्रकार माने गए हैं । हम यहाँ केवल निंबध की तत्त्व के रूप में शैली को देख रहे है । साहित्य की सभी विधाओं में शैली का महत्व है । उसी तरह निबंध में निबंधकार का संपूर्ण व्यक्तित्त्व ही उसकी शैली के माध्यम से व्यक्त होता है । कहीं निबंधकार मनोवैज्ञानिक गुत्थियों को सुलझाने का प्रयास करता है वहाँ



उसकी शैली का महत्व और बढ़ जाता है । 'जयनाथ नलिन' के अनुसार - शैली की सबसे बड़ी परख है निबंध । निबंध में शैली, साहित्य के अन्य रूपों की अपेक्षा सबसे अधिक स्वस्थ आकार ग्रहण करती है ।

## काव्य के तत्त्व (Elements of Poetry)

भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों ने काव्य के चार तत्त्व माने हैः भावतत्त्व, बुद्धित्त्व, कल्पनातत्त्व और शैलीतत्त्व । भाव, बुद्धि और कल्पना को संप्रेषित एवं प्रभावपूर्ण बनाने के लिए शैलीतत्त्व की आवश्यकता होती है । तात्पर्य है कि चारों तत्त्व परस्पर सहायक एवं पोषक होते हैं । दूसरे शब्दों में चारों तत्त्व एक-दूसरे से जुड़े होते हैं । इन चारों तत्त्वों का परिचय निम्न प्रकार से किया जा सकता हैः-

**परिभाषा -**

**मैथ्यू अर्नाल्ड -** (poetry is a criticism of life) काव्य मूलत: जीवन की आलोचना है ।

**कॉलरिज -** (poetry is the best words, in their best order ) सुन्दर शब्दों का सुंदर पदक्रम काव्य है ।

**सुमित्रानंदन पंत -** कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है ।

**प्रेमचंद -** काव्य जीवन की आलोचना है ।

### 1) भावतत्त्व (Element of Emotion):-

भारतीय आचार्यों ने भावतत्त्व को काव्य की आत्मा माना है । वे मानते हैं कि भावतत्त्व के अभाव में साहित्य निर्जीव और निष्प्राण हो जाता है । सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर जब साहित्यकार उच्च भावभूमि पर स्थित आनंदमय भावो का उद्रेक अपने हृदय में प्राप्त करता है और उन्हें अपने काव्य में प्रकट करता है, तब यही भाव रस का रूप धारण करके पाठक या श्रोता के हृदय को आनंदमग्न कर देता है । इसलिए साहित्य में भावतत्त्व का अपना विशिष्ट स्थान है । यह तत्त्व पाठक या श्रोता का भी संस्कार करता है । भाव को साकार रूप देनेवाले शब्द, अर्थ और कल्पना हैं । बौद्धिक तत्त्व पर भी भावतत्त्व का गहरा प्रभाव होता है । भावतत्त्व काव्य का प्रदान और प्रेरक तत्त्व है ।

### 2) बुद्धितत्त्व (Element of intellect)

इसे विचारतत्व भी कहा जाता है। बुद्धितत्त्व काव्य में भाव एवं कल्पना का संयोजन करता है। इसी तत्त्व के महत्व को स्वीकार करते हुए पाश्चात्य विद्वान 'टी.जी. विलयम्स' ने लिखा है, 'कविता विचारों के आदान-प्रदान करने का एक विशेष तरीका है। काव्य सुनियोजित विचारों की अभिव्यक्ति है'। तात्पर्य यही है कि बुद्धि या विचार तत्त्व को काव्य का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व स्वीकार किया गया है।

बुद्धितत्त्व में विचारों की प्रधानता होती है। साहित्यकार की रचना का एक विशिष्ट उद्देश्य होता है। वह उसके द्वारा पाठकों को एक विशिष्ट संदेश देना चाहता है। इस विशिष्ट संदेश तथा उद्देश्य के प्रतिपादन के लिए वह काव्य के माध्यम से अपने विचारों की अभिव्यक्ति करता है। वही विचार साहित्य में बुद्धितत्त्व कहलाते हैं।

**3 कल्पना तत्त्व (Element of Imagination)**

कल्पना शब्द में सृष्टि करना या निर्माण करना अर्थ निहित है। कल्पना द्वारा साहित्यकार अमूर्त वस्तुओं को भी मूर्त रूप प्रदान करता है और इसी कल्पना शक्ति के द्वारा वह अपनी रचना में उन्हीं चित्रों को पाठक की आँखों के सामने लाकर रख देता है। साधारण घटनाओं को भी कल्पना द्वारा कवि उन्हें असाधारण बना देता है। कल्पना ही कवि की सृजनशक्ति है और इसी बल पर वह सृष्टि का पुनर्निर्माण कर सकता है। कल्पना-संपन्न होने के कारण ही कवि भविष्यदृष्टा कहलाता है। क्योंकि अतीत को वर्तमान बनाना, सुदूरस्थ को प्रत्यक्ष करना और जीवन के अनुभव और ज्ञान को एक निश्चित रूप प्रदान करना कल्पना का कार्य है।

**शैली तत्त्व - (Element of Style)** प्रथम तीन तत्व साहित्य के भावपक्ष से संबधित है। परंतु शैलीतत्त्व का संबंध साहित्य के कलापक्ष से है। अनुभूति, भाव तथा कल्पना कितनी ही पुष्ट क्यों न हो, किंतु शैलीतत्त्व के अभाव वह अशक्त हो जायेगी। भावों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा शरीर का काम करती है - जैसे - निर्बल शरीर में स्वस्थ आत्मा का रहना कठिन है। उसी प्रकार अपुष्ट कमजोर भाषा द्वारा पुष्ट भावों की अभिव्यक्ति  भी कठिन है। भावों की पुष्टता के लिए अनुकूल भाषा का गठन तथा अभिव्यक्ति शैली पुष्ट होना चाहिए।

**उपयुक्त विवेचन** से स्पष्ट होता है कि काव्य-निर्माण में भावतत्त्व, बुद्धितत्त्व, कल्पनातत्त्व और शैलीतत्त्व का उचित समन्वय आवश्यक है। साहित्य के लिए इन चारों, तत्त्वों की समान रूप से आवश्यकता है।